हर-हरि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

यस्य श्रीकरुणार्णवस्य करुणालेशेन बालो ध्रुवः स्वेष्टं प्राप्य समार्य धाम समगाद्रङ्कोऽप्यविन्दच्छ्रियम् ।
याता मुक्तिमजामिलादिपतिताः शैलोऽपि पूज्योऽभवत् तं श्रीमाधवमाश्रितेष्टदमहं नित्यं शरण्यं भजे ॥

वर्ष ५० } गोरखपुर, सौर आश्विन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०२, सितम्बर १९७६ { संख्या ९ / पूर्ण-संख्या ५९८

## भगवान् हरि-हर आपके पापको दूर करें

यौ तौ शङ्खकपालभूषितकरौ मालास्थिमालाधरौ
देवौ द्वारवतीश्मशाननिलयौ नागारिगोवाहनौ ।
द्वित्र्यक्षौ बलिदक्षयज्ञमथनौ श्रीशैलजावल्लभौ
पापं वो हरतां सदा हरिहरौ श्रीवत्सगङ्गाधरौ ॥

भगवान् श्रीहरि एवं हर, जिनमेंसे एकका दाहिना हाथ तो शङ्खसे और दूसरेका कपालसे विभूपित है, एकके गलेमें मुण्डमाला तथा दूसरेके गलेमें जयमाला सुशोभित है, एक तो द्वारकावासी हैं और दूसरे श्मशानवासी, एकके वाहन गरुड हैं तो दूसरेका बैल, एकके दो नेत्र हैं तो दूसरेके तीन, एक बलिके यज्ञके तो दूसरे दक्षके यज्ञका मथन करनेवाले हैं, एक श्रीलक्ष्मीके स्वामी हैं तो दूसरे पार्वतीके तथा एक तो श्रीवत्सधारी हैं और दूसरे गङ्गाधर—वे दोनों सम्मिलितरूपसे आपके सभी पापोंको सदा दूर करते रहें ।

# कल्याण

श्रीभगवान् गीतामें कहते हैं—

**अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।**
(४।४०)

भाव यह है कि 'श्रद्धाकी कमी होनेके कारण, भगवत्-विषयको ठीक-ठीक न जाननेके कारण तथा संशयके कारण व्यक्ति परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है।'

अतः साधकका सबसे बड़ा शत्रु है—साधनामें संदेहका होना। मनुष्य एक बार किसीके कहनेसे या शास्त्रोंको देखकर साधनमें लगता है, पर साधन प्रारम्भ करते ही उसे सिद्धि नहीं मिल जाती; इससे वह अपने साधनमें संदेह करने लगता है। प्रायः यह संदेह बहुत अच्छे श्रद्धालु पुरुषोंको भी हो जाया करता है। फिर आगे चलकर उसकी बुद्धिमें यह धारणा भी होने लगती है कि 'न माल्रम ईश्वर हैं भी या नहीं। यदि हैं भी तो वे मुझे मिलेंगे या नहीं। मैं जो साधन करता हूँ, वह ठीक है या नहीं। ठीक होता तो अबतक मुझे लाभ अवश्य हुआ होता। हो न हो इस साधनमें कोई गड़बड़ी है।' इस तरहके विचारोंसे उसका साधन शिथिल पड़ जाता है। साधनकी शिथिलतासे लाभ और भी कम होता है, जिससे उसका संदेह और भी बढ़ने लगता है। होते-होते अन्तमें वह साधनासे ही च्युत हो जाता है।

अतः साधकको अत्यन्त सावधान रहकर अपने साधनपर श्रद्धा और विश्वास रखकर उसे आगे बढ़ाते जाना चाहिये। जैसे कई तरहकी बीमारियोंमें फँसे हुए मनुष्यको औषध-सेवनसे किसी एक बीमारीके नष्ट हो जानेपर भी लाभ नहीं माल्रम होता, इसी प्रकार मलसे पूर्ण अन्तःकरणमें तनिक-सा मल नष्ट होनेपर भी नहीं दीखता। पर यह निश्चय रखना चाहिये कि सच्ची साधनासे लाभ अवश्य होता है। साधक जितना साधनमें आगे बढ़ेगा, उतना ही उसे लाभ अधिक प्रतीत होगा। फिर उसे इस बातका पता लग जायगा कि भगवत्-सम्बन्धी बातें केवल कल्पना नहीं, परंतु ध्रुव सत्य है। इस प्रकारके विश्वाससे साधकको बहुत लाभ होता है। जिस प्रकार संदेहसे साधनमें हानि होती है, उसी प्रकार श्रद्धा एवं दृढ़ विश्वाससे बड़ा लाभ होता है। गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है—

**भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।**
**याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥**
(मानसवन्दना, श्लोक २)

'मैं श्रद्धा और विश्वासके स्वरूप श्रीपार्वतीजी और श्रीशंकरजीकी वन्दना करता हूँ, जिनके विना सिद्ध-जन भी अपने अन्तःकरणमें स्थित ईश्वरको नहीं देख पाते।' श्रीभुशुण्डिजीने भी कहा है—

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।
बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥
(मानस ७।९०)

अर्थात् 'विश्वासके विना कोई सिद्धि नहीं मिलती और इसी प्रकार श्रीहरिके भजन विना भी जन्म-मृत्युके भय-का नाश नहीं होता।'

अतः साधकको तत्पर होकर मनके संदेहको दूरकर श्रद्धाविश्वासको बढ़ाकर अति शीघ्र ही भगवत्प्राप्तिके लक्ष्य-पर द्रुतगतिसे बढ़ते जाना चाहिये। इससे लक्ष्यकी प्राप्ति बहुत शीघ्र होती है—

**तीव्रसंवेगानामासन्नः।** (योगदर्शन १।२१)

—श्रीभाईजी

# पुरुषार्थ-विवेचन एवं मोक्षनिर्णय

**[ श्रीजगद्गुरु शंकराचार्य शृङ्गेरी शारदापीठाधीश्वर श्रीश्रीसच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती स्वामीजी महाराजके अमृतोपदेश ]**

( संग्राहक—डॉ० एन्० एस्० दक्षिणामूर्ति )

'पुरुषैरर्थ्यते इति पुरुषार्थः'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार मनुष्योंद्वारा चाही जानेवाली धर्म-कामादि वस्तुको पुरुषार्थ कहते हैं। ये पुरुषार्थ चार हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

१–इनमें भी सबका साधक होनेसे धर्म प्रथम परिगणित हुआ है। वेदोंमें नित्य, नैमित्तिक और काम्य कहे जानेवाले विधि-कर्म तत्-तत् फल प्रदान करनेवाले धर्म कहे गये हैं। यद्यपि ये कर्म-धर्म समाप्त होते ही नष्ट हो जाते हैं; उदाहरणार्थ—अग्निमें हविष् डालनेका नाम याग है, इसी प्रकार गङ्गा-स्नानका अर्थ है—गङ्गाजलमें डुबकी लगाना। शिव-पूजाका अर्थ है, शिवलिङ्गपर जल, दूध, बिल्वपत्र, पुष्प इत्यादि समर्पित करना। इन पुण्य कर्मों या धर्मकी समाप्तिपर तुरत ही फल नहीं मिलता; बल्कि कुछ बादमें या कभी बहुत बाद मिलेगा, अथवा स्वर्गमें या कहीं अगले जन्मोंमें भी मिल सकेगा। ऊपर यद्यपि 'कर्म समाप्त होते ही तुरत नष्ट हो जाते हैं' ऐसा कहा गया है, परंतु शास्त्र कहते हैं कि उनका फल कभी-न-कभी अवश्य प्राप्त होगा। अतः यह कहना चाहिये कि कर्म—फल देनेकी योग्यता रखनेवाले अदृष्ट अथवा भाग्यको उत्पन्न कर नष्ट हो जाते हैं। वह भाग्य भी कुछ या बहुत समयतक रहकर फल देनेके बाद नष्ट हो जाता है। उसी भाग्यका एक नाम अपूर्व भी है।

२–अर्थ्यते इति अर्थः—सामान्य लोगोंद्वारा लोकयात्राके साधन होने तथा सर्वत्र आवश्यक होनेसे 'धन' को ही अर्थ कहा गया है। यह भी एक पुरुषार्थ है। यद्यपि यह भी मुख्यतया धर्मद्वारा ही साध्य है, पर कुछ लोग इसे श्रम या चोरी आदि अन्याय एवं अधर्मद्वारा भी अर्जित करते हैं, जो अनर्थानुबन्ध कहा गया है; अर्थात् भविष्यमें वह अर्थका बाधक एवं अनर्थोंको लाता है। अस्तु ! पर इसका उपयोग अन्य रूपमें न करके ऊपर कहे गये धर्मके साधनभूत कर्मोंके लिये करें तो यह धर्मके द्वारा पुरुषार्थ होगा—

नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।

( श्रीमद्भा० १। २। ९ )

३–मुझे सुख मिलना चाहिये, यह अभिलाषा काम है। यह भी मनुष्यके धर्मका साधन है; क्योंकि उसे कर्म करनेको यह प्रोत्साहित करता है। बुरे काम करनेके लिये प्रोत्साहित करनेवाली वाञ्छा—कामनाको भी काम कहते हैं, परंतु वह पुरुषार्थ नहीं हो सकती। क्योंकि उसकी प्रवृत्ति बुराईकी ओर है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥

( ७। ११ )

अर्थात् 'सभी प्राणियोंमें धर्मके अविरुद्ध कामरूपमें मैं ही हूँ।'

४–'मोक्षका अर्थ है—छुटकारा'। अपने वास्तविक स्वरूपको जाननेमात्रसे वह प्राप्त होता है।

उपर्युक्त चार पुरुषार्थोंमें कौन-सा श्रेष्ठ है, अब यह विचारणीय है। ये चारों पुरुषार्थ कहे जाते हैं, इस दृष्टिसे तो चारों समान हैं, तथापि ये सभी सर्वथा एक ही समान नहीं हो सकते। सभी जानते हैं कि इनमें अर्थ और काम निम्न प्रकारके हैं। इसी प्रकार धर्म भी अर्थ, काम एवं स्वर्ग इत्यादिका साधक होनेके कारण परम पुरुषार्थ नहीं है। वेदोंमें कहा गया है कि ज्योतिष्टोम आदि याग स्वर्गके ही साधन हैं। पर ये स्वर्गादि लोक भी क्षयिष्णु हैं—

'तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवा-
मुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते'।

( छान्दोग्य० ८। १। ६ )

अर्थात् कृषि इत्यादिके द्वारा अर्जित धान्यादि जैसे नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही पुण्यसे अर्जित देवादि लोक भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता भी कहती है—

'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'

( ९। २१ )

अतएव ये परम पुरुषार्थ नहीं हो सकते। अतः शाश्वत-मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' ( तैत्तिरी० उप० १। १ ) ब्रह्मको जाननेवाला परमानन्द

स्वरूपको प्राप्त करता है—कहकर मोक्षको सुखरूप कहा गया है। 'तरति शोकमात्मवित्' ( छान्दोग्य० ७। १। २ ) आत्माको जाननेवाला दुःखसे पार हो जाता है—कहकर मोक्षको दुःखरहित भी बताया गया है। अतएव वही मुख्य पुरुषार्थ है। इसके अतिरिक्त जब यह कहा जाता है कि देवयान-मार्गसे जानेवाले, सगुण ब्रह्मकी उपासना करनेवाले सांसारिक दुःखका अनुभव नहीं करते, तब अखण्ड सच्चिदानन्दरूप आत्मस्वरूपको जाननेवालोंको सांसारिक दुःख कैसे ? इससे यह स्पष्ट है कि मोक्ष शाश्वत और नाशरहित है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी भगवान्ने उपदेश दिया है—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥
( ८। १६ )

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
( ८। १५ )

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥
( १४। २ )

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥
( १५। ६ )

अर्थात् जीव ब्रह्मलोकतक जहाँ भी जाय, वापस आना ही होगा, पर जो लोग मुझे प्राप्त कर लेते हैं, वे अशाश्वत तथा दुःखालय रूप इस संसार या पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं करते। जो मुझमें ऐक्य प्राप्त कर लेते हैं, वे सृष्टिके समय भी उत्पन्न नहीं होते, प्रलयकालमें भी दुःखी नहीं होते। जिस स्वरूपको प्राप्त करनेसे पुनः वापस आना नहीं होता, वही मेरा स्वरूप है।

अतएव ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति या स्वरूपावस्थिति लक्षण-प्रपञ्चका परित्याग-स्वरूप मोक्ष ही नाशरहित तथा परम-सुखरूप है—

मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।
( श्रीमद्भा० २। १०। ६ )

इसके अतिरिक्त संसारमें दिखायी पड़नेवाली वस्तुओंसे विलक्षण होनेके कारण भी मोक्ष नित्य है। अनित्य वस्तु चार प्रकारकी होती है—( १ ) उत्पाद्य, ( २ ) प्राप्य, ( ३ ) संस्कृत और ( ४ ) विकृत। मोक्ष फल होनेपर भी इन चारोंके अन्तर्गत नहीं है, अतः वह सर्वथा नित्य है। इधर मोक्ष उत्पाद्य नहीं है। जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह नष्ट हो जाती है, उसको मोक्ष नहीं कह सकते। सभी मोक्षवादी यह स्वीकार करते हैं कि जो नित्य है, वही मोक्ष है। अतः अविनाशी मोक्ष ही परमपुरुषार्थ है। परंतु वेदोंमें कुछ स्थानोंमें कहा गया है—

'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति। अपाम सोमममृताऽभूम।' ( शतपथब्रा० २। ६। ३। १ ) अर्थात् चातुर्मास्य नामक याग करनेवालेका पुण्य अक्षय होता है। हमने सोमरसका पान किया और हम अमर हो गये।' इत्यादि वचनोंसे शङ्का हो सकती है कि धर्म तथा उसके द्वारा प्राप्त फल भी नित्य ही है। तब फिर मोक्षमात्रको ही नित्य कैसे कहा जाय ? पर ये ही वेद अन्यत्र कहते हैं—'इस संसारमें अर्जित धान्यादि जैसे नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही स्वर्गादि भी नष्ट हो जाते हैं।' दोनों वेदवाक्य हैं, दोनों प्रमाण हैं। एकको स्वीकार कर दूसरेको छोड़ देना ठीक नहीं है। अतएव जो वेदवाक्य सबके अनुभव योग्य है, वे सत्य हैं, पर रोचक वाक्य अर्थवाद है—ऐसा समझना चाहिये। जब वेद और स्मृतिमें विरोध दिखायी पड़े, तब वेदको ही प्रमाण मानना चाहिये। वेदमें ही विरोध दिखायी पड़े तो अर्थवादादिका त्याग कर यथार्थ एवं युक्तियुक्त वेद-वाक्यको ही प्रमाण मानना चाहिये। अतः इस युक्तिसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु नष्ट भी हो जाती है, यह निर्णय है कि मोक्षको छोड़कर कोई दूसरा फल बहुत समयतक रहनेपर भी नाशसे नहीं बच सकता।

## मोक्षके भेद

मोक्षके भी पाँच प्रकार हैं—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य ( सार्ष्टि ) तथा कैवल्य। इनमें उपास्यके लोकमें पहुँचनेका नाम सालोक्य है। उसके समीपमें रह जानेका नाम सामीप्य है। उपास्य जिस रूपमें है, उसी रूपको पा जाना सारूप्य है। मैं वही हूँ, इस भावसे देवताकी उपासना कर उसके फलस्वरूप देवतामें ऐक्य होनेका नाम सायुज्य ( सार्ष्टि मोक्ष ) है। सच्चिदानन्द तथा नित्य आत्मासे अभिन्न मूल कारण परब्रह्मस्वरूपको जाननेका नाम कैवल्य है। इसे ही अविद्या-निवृत्ति या शुद्ध निर्वाण कहते हैं। कहा गया है—

'अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः।
निवृत्तिरात्ममोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः॥

तस्मादविद्यास्तमयो नित्यानन्दः प्रतीतितः।
निःशेषदुःखोच्छेदाच्च पुरुषार्थः परो मतः॥'
( सर्वदर्शन-संग्रह, शांकरदर्शन )

अर्थात् अविद्यानिवृत्ति ही मोक्ष है। अविद्या ही बन्धन है। अज्ञानकी निवृत्तिके बाद आत्मा प्रकाशित होती है। अविद्याके नाशके बाद नित्यानन्द होने, सभी दुःखोंके उच्छेद होनेसे मोक्ष ही वस्तुतः परम पुरुषार्थ है।

सूतसंहितामें विस्तारपूर्वक कहा गया है कि कैवल्य नामक मोक्ष ही प्रधान है—

एषैव परमा मुक्तिः प्रोक्ता वेदार्थवेदिभिः।
अन्याश्च मुक्तयः सर्वा ह्यवराः परिकीर्तिताः॥
( सूतसं० ३। २। ३५ )

वेदार्थज्ञाता बताते हैं कि यही श्रेष्ठ मुक्ति है, अन्य सभी मुक्तियाँ उससे अवर या हीन हैं। यद्यपि मुक्ति शब्द केवल कैवल्यके लिये ही है, तथापि संसारमें सालोक्यादिके लिये भी उसका प्रयोग होता है। क्योंकि सालोक्यादि मुक्ति पानेवाले भी पुनः संसारमें नहीं आते—

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्॥
( ब्रह्मसू० ३। ३। ३२ शां०भाष्य आदिमें उद्धृत वचन )

वे सब आत्मविचार कर, आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर प्रलयके अन्तमें ब्रह्मके साथ कैवल्य प्राप्त करते हैं। अतएव परामुक्तिके साधनभूत सालोक्यादिको भी 'मुक्ति' कहते हैं।

यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि कैवल्य कोई नयी प्राप्त होनेवाली वस्तु नहीं है। यह नित्य परमात्मस्वरूप और अपरिवर्तनशील है एवं सदा एक ही स्थितिमें रहनेवाला है। इसपर शङ्का हो सकती है कि तब इसको पानेकी अभिलाषा करना, इसके साधनभूत ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मविद् गुरुकी खोजमें जाना, उस गुरुका उपदेश प्राप्त कर आत्मविचार, निदिध्यासन आदि साधनोंकी फिर क्या आवश्यकता है ? एक उदाहरणसे इसका उत्तर स्पष्ट हो जायगा। मान लें एक व्यक्ति मेलेमें जाता है। वह अपने गलेमें विद्यमान सोनेके हारको भ्रमसे भूलकर 'मेरे गलेमें सोनेका जो हार था, वह कहीं खो गया' इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिसे कहने लगता है। फिर उसका कोई चतुर मित्र उसके गलेमें ही उस सोनेका हार देखकर कहता है—'तुम्हारे हारको तो कोई ले नहीं गया है, वह तो तुम्हारे ही गलेमें है।' यह सुनकर वह अपने हाथसे अपने गलेको छूकर देखता है और वहाँ हार देखकर संतुष्ट हो जाता है। हार गलेमें ही था, फिर भी यह सोचकर कि वह खो गया, बड़ा दुःखी होता है। तदनन्तर बतलानेपर वह इस प्रकार प्रसन्न होता है, मानो उसे फिरसे पा गया हो। इसी प्रकार हमलोग भी यद्यपि परमात्मस्वरूप हैं, तथापि उसे भूलकर आनन्दको न पहचान कर दुखी होकर सुख प्राप्त करनेके लिये इधर-उधर घूमते-फिरते हैं। ऐसी स्थितिमें पूर्वकृत सुकृतसे सद्गुरुको प्राप्त कर आत्मविचारके द्वारा अज्ञानके नष्ट हो जानेपर स्व-स्वरूपको पहचान कर आनन्दका अनुभव करते हैं। अतएव अज्ञानको दूर करनेके लिये आत्मविचार इत्यादि साधन आवश्यक होते हैं।

इस प्रकार यह निर्णय हुआ कि सभी पुरुषार्थोंमें कैवल्य ही सर्वश्रेष्ठ है। अब यह विचार करें कि कैवल्यमें कौन-सी वस्तु सहायक होती है। उपनिषदोंमें कहा गया है—

'तरति शोकमात्मवित्' ( छान्दोग्योप० ७। १। ३ )—आत्माको जाननेवाला दुःखको पार हो जाता है, 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' ( तैत्तिरीयोप० १। १ )—ब्रह्मको जाननेवाला परवस्तुको प्राप्त कर लेता है, ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' ( मुण्डकोप० ३। २। ९ )—ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही होता है, 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' ( श्वेताश्वतरोप० ३। ८ )—ब्रह्मज्ञानको छोड़कर मोक्ष प्राप्त करनेके लिये दूसरा मार्ग नहीं है, 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्' ( मुण्डकोप० १। २। १२ )—उस ब्रह्मको जाननेके लिये गुरुकी खोजमें जाना चाहिये—इन सभी प्रमाणोंसे ज्ञान ही कैवल्यको प्राप्त करनेका उपाय सिद्ध होता है। श्रीमद्-भगवद्गीता ( ७। १९ ) में भी कहा गया है—'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।' बहुत जन्मोंके अन्तमें ज्ञानी मुझे प्राप्त करता है। 'ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्' ( १८। ५५ ) मेरे अनुग्रहका पात्र बननेके बाद मेरे वास्तविक स्वरूपको जानकर वह मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।

अब इस ज्ञानके सम्बन्धमें विचार करें। श्रीशंकर-भगवत्पादने कहा है—

ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥
( अपरोक्षानुभूति २४ )

अर्थात् मैं असद्रूप देह नहीं हूँ। मैं सम, शान्त, सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म हूँ—ऐसा समझना ही ज्ञान है, यह पण्डितोंका कहना है। अस्तु!

## मोक्षोपायसंग्रह

वैसे उपनिषद्, योगवासिष्ठ एवं महाभारत मोक्षधर्मादिमें शुद्धात्मज्ञानको ही मोक्षका मुख्य उपाय बतलाया गया है। पर सूतसंहिता मुक्तिखण्डमें जीवन्मुक्ति, क्रममुक्ति, सायुज्यमुक्ति अनेक मुक्तिभेदोंको दिखलाकर प्रणव ( गीता ८। ९ ), पञ्चाक्षरी, शतरुद्रीय आदिके जप एवं वेदारण्य* ( ३। ३। ६०—१०८ ), काशी आदिमें मरणको भी मुक्तिका कारण कहा है। इसी प्रकार शास्त्रोंमें अन्तमें भगवन्नामस्मरण एवं गया-श्राद्धादिको भी मोक्षका कारण कहा है—

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं तथा।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥
( गरुडपु० १। ८३। १४ )

ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोरक्षार्थ मरण एवं कुरुक्षेत्रका वास—ये चार मुक्तिके उपाय हैं।

श्रीशैलदर्शनान्मुक्तिः वाराणस्यां मृतस्य च।
केदारोदकपानेन मध्यनाडीप्रदर्शनात्॥
( योगाशिखोपनिषद् ६। ४२ )

श्रीशैलके दर्शन, काशीमरण, केदारनाथके जलपान तथा सुषुम्णाके दर्शन या कुण्डलिनी-जागरणसे मोक्ष होता है। किसी स्थल-पुराणका एक यह श्लोक भी प्रसिद्ध है—

दर्शनादभ्रसदसि जन्मना कमलालये।
काश्यां हि मरणान्मुक्तिः स्मरणादरुणाचले॥

'चिदम्बर-क्षेत्रके ( जहाँ आकाश-तत्त्व-लिङ्ग विराजमान है ) दर्शनमात्रसे, कमलालयक्षेत्रमें जन्म लेनेसे, काशीमें मरनेसे और अरुणाचलक्षेत्रके स्मरणसे ही मुक्ति हो जाती है।'

स्वधर्मकर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥
( गरुडपु० १। १०९। ४३ )

अपने जीवनभर सदा धर्म-कर्मका ही अनुष्ठान करनेवाले शास्त्रव्यसनी, स्वदाररत, जितेन्द्रिय, अतिथिसेवी श्रेष्ठ पुरुषोंका गृहस्थाश्रममें भी मोक्ष होता है।

## उपसंहार

अन्तमें कहना यही है—वेद-शास्त्र-पुराणोंके अनुसार कैवल्य ही परम पुरुषार्थ है। अतः सभी कल्याणकामीको चाहिये कि अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार साधना करके अन्तमें इस कैवल्यरूप मोक्षको प्राप्त करनेका प्रयत्न करें।

# भगवान् शंकरसे प्रार्थना

सिव! सिव! होइ प्रसन्न करु दाया।
करुनामय उदार कीरति, बलि जाउँ हरहु निज माया॥ १॥
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा राम-पद-पंकज, सपनेहुँ भगति न होई॥ २॥
रिषय, सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज, सुर, अपर जीव जग माहीं।
तव पद बिमुख न पार पाव कोउ, कलप कोटि चलि जाहीं॥ ३॥
अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव, त्रिपुरारी।
मोह-निहार-दिवाकर संकर, सरन सोक-भयहारी॥ ४॥
गिरिजा-मन-मानस-मराल, कासीस, मसान-निवासी।
तुलसिदास हरि-चरन-कमल-बर, देहु भगति अबिनासी॥ ५॥
( विनयपत्रिका ९ )

* यह वेदारण्य दक्षिण भारतमें है। मायावरमसे तिरुवारूर जानेवाली लाइनपर आगे तिरुतुरैपुंडि स्टेशन है। वहाँसे एक लाइन 'पाई कैलिमियर' स्टेशनतक जाती है। इसी लाइनपर तिरुतुरैपुंडिसे २२ मील दूर वेदारण्यम् छोटा-सा स्टेशन है। स्टेशनसे लगभग एक मीलपर शिवमन्दिर है।

वेदारण्यम्में वेदपुरीश्वरम् शिव-मन्दिर है। यह मन्दिर भी विशाल है। यहाँ जो भगवान् शंकरकी लिङ्गमूर्ति है, उसे वेदपुरीश्वर कहते हैं। मन्दिरमें ही पार्वती-मूर्ति है। मन्दिरके आस-पास अनेक देवताओंके मन्दिर घेरेमें ही हैं। पासमें एक उत्तम सरोवर भी है। ( तीर्थाङ्क, पृष्ठ—३६३ )

# भगवान्‌की सपर्या

( अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज )

भला इस स्वतन्त्रताके युगमें सेवाका उपदेश ! पर सचमुच भगवान्‌की सेवामें जो सुख तथा शान्ति है, वह संसारके सम्राट् बननेमें भी कहाँ है ? भगवान् अखिल-ब्रह्माण्डनायक हैं, उनकी दासतामें सबसे बड़ी विलक्षणता तो यह है कि सेवक अपनी सच्ची सेवासे उनका सखा ही नहीं, हृदयेश्वरतक बन जाता है। **'दासोऽहम्'** कहते-कहते **'सोऽहम्'**की नौबत आ जाती है और गोपीवस्त्रापहारी भगवान् हठात् **'दासोऽहम्'**के 'दा' कारको चुराकर उसे स्व-स्वरूप प्रदान कर देते हैं—

**दासोऽहमिति या बुद्धिः पूर्वमासीज्जनार्दने ।**
**दाकारोऽपहृतस्तेन गोपीवस्त्रापहारिणा ॥**

यद्यपि सेवाधर्म योगियोंके लिये भी दुष्कर है, तथापि भगवान्‌की सेवा कठिन होते हुए भी बड़ी सरल है। वे तो थोड़ेहीमें प्रसन्न हो जाते हैं। आत्माराम, आप्तकाम, पूर्णकाम भगवान्‌को धन, जन, विद्या, बल आदिकी अपेक्षा ही क्या है ? शङ्का हो सकती है कि यदि ऐसी बात है, तब भगवान् स्वयं ही अपने भक्तोंको—

**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।**
**यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥**

( गीता ९ । २७ )

'हे कौन्तेय ! तुम जो कुछ भी यज्ञ, तप, दानादि लौकिक, वैदिक धर्म-कर्म करते हो, वह सब मुझ सर्वान्तरात्माको समर्पण कर दो।' इत्यादि आज्ञा-द्वारा सर्वस्व-समर्पणका आदेश क्यों देते हैं—

इसका समाधान यही है कि प्रभु स्वयं तो निजलाभ (स्वस्वरूपभूत अनन्त परमानन्दलाभ)से ही परिपूर्ण हैं, परंतु भक्तकी कल्याणकामनासे ही उसके द्वारा समर्पित सपर्याओंका ग्रहण करुणासे करते हैं, क्योंकि प्राणी जो कुछ भगवान्‌के पादपङ्कजमें समर्पण करता है, वही उसे मिलता है। जैसे दर्पणादिके भीतर प्रतिमुख ( मुखं-प्रतिबिम्ब )को यदि कटक-मुकुट-कुण्डलादि भूषण-वसन पहनाकर शृङ्गार करना हो तो मुख ( बिम्ब )का ही शृङ्गार करना आवश्यक है। बिम्बके शृङ्गारसे प्रति-बिम्ब अनायास ही शृङ्गारित हो जाता है, अन्यथा विश्वम्भरके शिल्पी ( कारीगर ) भी प्रतिबिम्बको मुकुट-कुण्डलादि पहनानेमें असमर्थ ही रहेंगे। ठीक इसी तरह कोई भी प्राणी अपने पारलौकिक अभ्युदय, निःश्रेयसादि पुरुषार्थोंकी प्राप्ति तभी कर सकता है, जब वह श्रद्धा-भक्तिसे प्रभुपद-पङ्कजकी सपर्या करे। माना कि आज कोई साम्राज्य, वैराज्यादि अनेक आनन्द-सामग्रियोंसे परिपूर्ण है, परंतु इस विनश्वर शरीरका पात होनेपर वह कहाँ जायगा, कैसे और क्या करेगा ? कोई भी ऐसा व्यक्ति या संस्था नहीं है, जहाँ हम अपनी धरोहर रक्खें और जन्मान्तरमें फिर ग्रहण कर सकें। इसका तो एकमात्र यही उपाय है कि भगवान्‌के शास्त्रानुसार यज्ञ-तप-दानादिसे भगवान्‌की सपर्या करके भगवान्‌में ही उसे समर्पण किया जाय। करुणामय, सर्वस्व, सर्वसामर्थ्य, सर्वप्रद भगवान् ही प्राणियोंकी भक्ति-श्रद्धासे सम्पादित आराधनाओंका परम मनोहर फल प्रदान करते हैं। इसलिये यद्यपि स्वतः **'नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।'** ( गीता ५ । १५ ) के अनुसार प्रभु किसीका पुण्य-पाप नहीं ग्रहण करते, तथापि अपनी अचिन्त्य अत्यन्त दिव्य लीलाशक्तिसे भक्त-कल्याण-कामनासे भक्तसम्पादित सामग्रियोंको ग्रहण करते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत पुनः-पुनः भक्तको प्रोत्साहित करते हैं कि तुम सब कुछ मुझमें ही समर्पित कर दो। भगवान् यह भी कहते हैं कि जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल मुझको समर्पण करता है, मैं उसे अनन्य आदरसे

ग्रहण किंवा अशन करता हूँ। यद्यपि पत्र, पुष्प खाद्य पदार्थ नहीं हैं, तथापि प्रभु भक्तिरसपरिप्लुत पत्रपुष्पादिकोंको भी ग्रहण—अशन करते हैं। ( गी० ९।२७ ) भक्त-भावना-पराधीन, प्रेमविभोर भगवान् विवेकहीन मुग्ध-शिशुके समान पत्र-पुष्पादिको भी खा लेते हैं। किंवा रसिकेन्द्रशेखर, रसराजमणि भगवान् भक्तिरसपरिप्लुत पत्र-पुष्पादिका स्वाद रसनासे ही लेना उचित समझते हैं। तभी तुलसीदल एवं जलचिल्लुकसे ही भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंके हाथ अपने-आपको बेच देते हैं—

**तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन च।**
**विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥**

इतना ही क्यों, प्रेममय प्रभु तो नवनीत और दधिके लिये प्रेममयी व्रजाङ्गनाओंके घर चोरी करने भी जाते हैं। क्षीरसागरशायी एवं परमानन्दसुधासिन्धु किंवा पूर्णानुरागरससागर भगवान्को—

**ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछपै नाच नचावैं।**

गोपियाँ उन्हें नचाती हैं।

किसी दिन नवनीत चुराकर आतप-संतप्त भूमिपर दौड़ते हुए श्रीकृष्णको देखकर कोई स्नेहविह्वला सौभाग्य-शालिनी व्रजाङ्गना कहती है—

**नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन।**
**आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव॥**
( कृ० कर्णा० )

'नवनीत चुरा लिया तो क्या हुआ, भले ले लिया, परंतु हे माधव! आतप ( घाम )से तापित भूमिपर तो मत भागो, मत दौड़ो।' एक प्रेमी तो बड़ी सुन्दर सलाह देते हैं—

**क्षीरसागरमपहृत्य शङ्कया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।**
**मानसे मम घनान्धतामसे नन्दनन्दन कथं न लीयसे॥**
( रहीमरत्ना० )

'प्रेममय नन्दनन्दन! यदि आपने नवनीत चुराकर माके डरसे पलायन ही स्वीकार किया, तब तो फिर आओ नाथ! मेरे गाढ़ अज्ञानान्धकारसमाच्छन्न मानसमें, मैं तुम्हें छिपा लूँ, बस, फिर तुम्हें कोई नहीं देख सकेगा।' यह आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम प्रभुकी सकामता केवल भक्तमनोऽनुगामिनी लीलाशक्तिके प्रभावसे ही है।

**नमो नवघनश्यामकामकामितदेहिने।**
**कमलाकामसौदामकणकामुकगेहिने॥**
( मल्लिना० )

'अनन्तकोटि कन्दर्पोंके मनोहरण करनेवाले नवघन-श्याम भगवान्के लिये नमस्कार है, जो कि कमलाकी कामनावाले सुदामाके तण्डुलकी कामना करते हैं।

प्रभुको प्रसन्न करनेके लिये धन, उत्तम कुल, रूप, तप, व्रत, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धियोग—ये सब पर्याप्त नहीं हैं। गजेन्द्रपर तो इन पूर्वोक्त धनादिके बिना भी भगवान् संतुष्ट हो गये।—**'भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय।'** ( श्रीमद्भा० ७।९।९ ) इतना ही नहीं, 'भगवत्पादारविन्दविमुख, द्वादश-गुण-सम्पन्न ब्राह्मण भी नगण्य है और भगवत्पादपङ्कजानुरागी श्वपच भी आदरणीय होता है। कारण, वह भूरिमान विप्र आत्मशोधन भी नहीं कर सकता और वह श्वपच तो कुलसहित अपनेको मुक्त कर लेता है।' यद्यपि कहा जा सकता है कि साक्षात् भगवान्ने श्रीमुखसे ही कहा है—

**ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह।**
**विद्यया तपसा तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः॥**
( श्रीमद्भा० १०। ८६। ५३ )

समस्त प्राणियोंमें ब्राह्मण जन्मसे ही श्रेष्ठ हैं, फिर विद्या, तपस्या एवं सन्तोषसम्पन्न मेरी कलाओंसे युक्त ब्राह्मणोंके विषयमें तो कहना ही क्या?

**न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम्।**
**सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम्॥**
( श्रीमद्भा० १०। ८६। ५४ )

'मुझे अपना यह चतुर्भुज रूप भी ब्राह्मणसे प्रिय नहीं है। ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्वदेवमय हूँ,'

तब फिर ब्राह्मणसे श्वपचकी श्रेष्ठता कैसे कही जा सकती है? तथापि 'भक्तिके विना अत्यन्त पूज्य ब्राह्मण भी निन्द्य है और भक्तियुक्त अतिसाधारण श्वपच भी आदरणीय है,' ऐसा कहकर भक्तिका ही माहात्म्य वर्णन किया गया है। यहाँ ब्राह्मणकी निकृष्टता-वर्णनमें तात्पर्य नहीं है। वास्तवमें सिद्धान्त तो यह है कि जैसे गौ, तुलसी, अश्वत्थ, गङ्गाजल आदि पदार्थ भले ही अपनी दृष्टिसे अकृत-कृत्य हों, परंतु पूजकोंके तो परम कल्याणके ही निदान हैं। गौ स्वयं पशु होनेके कारण चाहे आत्मकल्याण करनेमें असमर्थ ही हो, परंतु शास्त्रानुसार उसके रोम-रोममें देवताओंका निवास है और उसके पञ्चगव्य तथा रजसे अवश्य ही सर्वपापक्षय होता है। इसी तरह जन्मना श्रेष्ठ ब्राह्मण पूजकका कल्याण कर सकनेपर भी यदि स्वयं स्वधर्मनिष्ठ या भगवत्परायण न हुआ, तब तो वह आत्मकल्याण नहीं कर सकता। पूजकोंकी श्रद्धा सुदृढ करनेके लिये शास्त्रोंमें सर्वगुण-निरपेक्ष जन्मसे ही ब्राह्मणको श्रेष्ठ बतलाया गया है। और ब्राह्मण कहीं जन्मना ब्राह्मणके ही गर्वमें स्वधर्मबहिर्मुख न हो जाय, अतः उसके लिये यह कहा गया है कि भगवान्‌से विमुख ब्राह्मणकी अपेक्षा तो भगवद्भक्त श्वपच भी श्रेष्ठ है। इस तरह निन्दापरक वचन ब्राह्मणोंको सावधान करनेके लिये हैं और स्तुतिपरक वचन पूजकोंकी श्रद्धा स्थिर करनेके लिये हैं। परंतु मोहवश आज ब्राह्मण तो अपने स्तुतिपरक और पूजक उनके निन्दापरक वचनोंको ही सामने रखते हैं।

अस्तु, यह दास्ययोगका ही अद्भुत महत्त्व है कि जिसके विना विप्र भी अकृतार्थ रहता है और जिसके सम्बन्धसे श्वपच भी कुलसहित कृतार्थ हो जाता है। धन, जन, देह, गेहादि निज सर्वस्व तथा अपने-आपको प्रभुमें समर्पण करके श्रद्धा-स्नेहपुरः-सर प्रभुपादपङ्कजसेवन ही दास्ययोग है—**'दास्यं गतानां परदैवतेन'** ( श्रीमद्भा० १० । १२ । ११ )। प्रभुके परमानन्द-रसात्मक मधुर स्वरूप, गुण-चरित्रादिमें मनकी गाढ़ आसक्ति ही मुख्य सेवा है। इसकी सिद्धिके लिये वर्णाश्रम-धर्म, यज्ञ, तप, दान आदि परमावश्यक हैं। तन, मन, धनसे भगवत्सेवामें तत्पर सेवक सिवा भगवान्‌के किसी वस्तुको अपना नहीं समझता। वह धर्म, कर्म, समाज-सेवा आदि सभी कुछ भगवान्‌के ही लिये करता है। वह निखिल विश्वको भी अपने भगवान्‌का ही रूप समझ कर उसकी सेवा करता है। सोते-जागते सदा ही अनन्यसेवकके समस्त व्यापार केवल स्वामीके लिये ही होते हैं। भगवान्‌का विश्व और उनके भक्त भगवदीय हैं। भगवदीय सेवासे भगवत्सेवा प्राप्त होती है। इसलिये भगवान्‌का दास भगवदीय सेवामें बड़ा स्नेह रखता है। वास्तवमें यदि किसी सौभाग्यशालीको निष्कपट दास्ययोग मिल जाय फिर तो कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता। भगवत्-पादपङ्कजमें जिसका मनोमिलिन्द आसक्त है, वह तो निश्चिन्त निर्द्वन्द्व रहता है। जो दशा पुत्रवत्सला माके उत्सङ्गलालित शिशुकी है, वही दशा सेवककी है। वे प्रभुके भरोसे हो अनन्य, अशोच रहते हैं—

**सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥**
( मानस ४ । २ । २ )

भगवान्‌में आत्मनिवेदन करनेसे बढ़कर शोकनिवृत्तिका और उपाय ही क्या है? अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके माता-पिता भगवान्‌के शरणागत सेवकको फिर आँच कहाँ? शरणागतके लिये ही तो भगवान्‌का **'मा शुचः'** ( गी० १८ । ६६ ) यह आश्वासन है। सेवाभक्तिका ऐसा महत्त्व है कि भगवद्-भावनापन्न मुक्त संत भी मुक्तिकी ओर न देखकर सेवाभक्ति चाहते हैं। तभी तो श्रीप्रह्लाद पूर्ण कृतकृत्य होकर भी भगवदीयोंकी तथा भगवान्‌की सेवाका ही वर माँगते हैं।

---

# ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

## भगवच्चरणोंमें अनन्य शरणागति

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
( गीता १८ । ६२, ६६ )

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं अर्जुन ! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्ति और सनातन परमधामको प्राप्त होगा । ( वह परमात्मा मैं ही हूँ, अतएव ) सर्व धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर ।',

भगवान्की उपर्युक्त आज्ञाके अनुसार हम सबको भी उनके शरण हो जाना चाहिये । लज्जा-भय, मान-बड़ाई और आसक्तिको त्यागकर शरीर और संसारमें अहंता-ममतासे रहित होकर केवल एक परमात्माको ही परम आश्रय, परम गति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भावसे अतिशय श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान्के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूपका चिन्तन करते रहना एवं भगवान्का भजन-स्मरण करते हुए ही भगवदाज्ञानुसार कर्तव्यकर्मोंका निःस्वार्थ भावसे केवल परमेश्वरके लिये ही आचरण करना तथा सुख-दुःखोंकी प्राप्तिको भगवान्का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर उनमें समचित्त रहना—संक्षेपमें इसीका नाम 'अनन्य शरण' है।

चित्तसे भगवान् सच्चिदानन्दघनके स्वरूपका चिन्तन, बुद्धिसे—'सब कुछ एक नारायण ही है', ऐसा निश्चय, प्राणोंसे ( श्वासद्वारा ) भगवन्नाम-जप, कानोंसे भगवान्के गुण, प्रभाव और स्वरूपकी महिमाका भक्तिपूर्वक श्रवण, नेत्रोंसे भगवान्की मूर्ति और भगवद्भक्तोंके दर्शन, वाणीसे भगवान्के गुण, प्रभाव और पवित्र नामका कीर्तन एवं शरीरसे भगवान् और उनके भक्तोंकी निष्काम सेवा—ये सभी कर्म शरणागतिके अन्दर आ जाते हैं। इस प्रकार भगवत्सेवापरायण होनेसे भगवान्में प्रेम होता है ।

संसारमें जिन वस्तुओंको मनुष्य अपनी समझता है, वे सब भगवान्की हैं। मनुष्य अज्ञानके कारण ही उनपर अपने अधिकारका आरोपण कर सुखी-दुःखी होता है । भगवान्की सब वस्तुएँ उनके ही काममें लगनी चाहिये । भगवान्के कार्यके लिये यदि प्रकृत्या सांसारिक सारी वस्तुएँ मिट्टीमें मिल गयीं तो भी बड़े आनन्दकी बात है और उनके कार्यके लिये बनी रहें तो भी बड़े हर्षका विषय है । उन वस्तुओंको न तो अपनी सम्पत्ति समझनी चाहिये और न उन्हें अपने भोगकी सामग्री ही माननी चाहिये । क्योंकि वास्तवमें तो सब कुछ नारायणका ही है । इसलिये नारायणकी सर्व वस्तु नारायणके अर्पण की जाती है । यों समझकर संसारमें जो कार्य किये जाते हैं, वही भगवत्प्रेमरूप शरणकी प्राप्तिका साधन है ।

उपर्युक्त प्रकारसे जो कुछ भी कर्म किये जायँ, सब भगवान्के लिये करने चाहिये । इसीका नाम अर्पण है । जो कुछ भी हो रहा है, सब भगवान्की इच्छासे हो रहा है, लीलामयकी इच्छासे लीला हो रही है । इसमें व्यर्थके बुद्धिवादका बखेड़ा नहीं खड़ा करना चाहिये । अपनी सारी इच्छाएँ भगवान्की इच्छामें मिलाकर अपना जीवन सर्वतोभावसे भगवान्को सौंप देना चाहिये । जब इस प्रकार जीवन समर्पण होकर प्रत्येक कर्म केवल भगवदर्थ ही होने लगेगा, तभी 'हमें भगवत्प्रेमकी कुछ प्राप्ति हुई है—हम भगवान्के शरण होने चले हैं', ऐसा समझा जायगा ।

सच्चिदानन्दघन परमात्माकी पूर्ण शरण हो जानेपर

एक सच्चिदानन्दघनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रह जाता। वह अपार, अचिन्त्य, पूर्ण, सर्वव्यापक एक परमात्मा ही अचल, अनन्त, आनन्दरूपसे सर्वत्र परिपूर्ण है। उस आनन्दको कभी नहीं भुलाना चाहिये। आनन्दघनके साथ मिलकर आनन्दघन ही बन जाना चाहिये। जो कुछ भासता है, जिसमें भासता है और जिसको भासता है, वह सब एक आनन्दघन परमात्मा ही परिपूर्ण है। इस पूर्ण आनन्दघनका ज्ञान भी उस आनन्दघनको ही है। वास्तवमें तो यही अनन्य शरणागति है।

इस अनन्य शरणागतिमें प्रधानतः चार बातें साधकके लिये समझनेकी हैं—

( १ ) सब कुछ परमात्माका समझ कर उनको— समर्पण कर देना।

( २ ) उनके प्रत्येक विधानमें परम संतुष्ट रहना।

( ३ ) उनकी आज्ञानुसार उन्हींके लिये समस्त कर्तव्य कर्म करना।

( ४ ) नित्य निरन्तर स्वाभाविक ही उनका एकतार स्मरण रखना।

## सर्वस्व अर्पण

सब कुछ परमात्माके अर्पण कर देनेका अर्थ घरद्वार छोड़कर संन्यासी हो जाना या कर्तव्य-कर्मोंका त्याग कर कर्महीन हो बैठना नहीं है। सांसारिक वस्तुओंपर हमने भूलसे जो ममता आरोपित कर रक्खी है; अर्थात् उनमें जो अपनापन है, उसे उठा लेना ही उनकी वस्तु उनके अर्पण कर देना है। वस्तु तो उन्हींकी है, हमसे छिन भी जाती है, परंतु हम उन्हें भ्रमसे अपनी मान लेते हैं, इसीसे छिननेके समय हमें रोना भी पड़ता है।

कल्पना कीजिये किसी एक धनी सेठका बड़ा कारोबार है, जिसपर एक मुनीम काम करता है। सेठने उसको ईमानदार और कर्तव्य-परायण समझकर सम्पत्तिकी रक्षा, व्यापारके संचालन और नियमानुसार व्यवहार करनेका सारा भार उस मुनीमको सौंप रक्खा है। अब मुनीमका यही कर्तव्य है कि वह मालिककी किसी भी वस्तुपर अपना किंचित् भी अधिकार न समझकर, किसीपर ममता या अहंकार न रखकर, मालिककी किसी आज्ञा और उसकी नियतकी हुई विधिके अनुसार समस्त कार्य बड़ी दक्षता, सावधानी और ईमानदारीके साथ करता रहे। करोड़ोंका लेन-देन करे, करोड़ोंकी सम्पत्तिपर मालिककी भाँति अपनी सँभाल रक्खे, मालिकके नामसे हस्ताक्षर करे, परंतु अपना कुछ भी न समझे। मूलधन मालिकका, कारोबारमें होनेवाला मुनाफा मालिकका और नुकसानका उत्तरदायित्व भी मालिकका।

यदि वह मुनीम कहीं भूल, प्रमाद या बेईमानीसे मालिकके धनको अपना समझकर अपने काममें लाना चाहे, मालिककी सम्पत्ति या नफेकी रकमपर अधिकार कर ले तो वह चोर, बेईमान या अपराधी समझा जाता है। न्यायालयमें मुकदमा जानेपर वह सम्पत्ति उससे छीन ली जाती है, उसे कठोर दण्ड मिलता है और उसके नामपर इतना कलङ्क लग जाता है, जिससे वह सबमें अविश्वासी समझा जाकर सदाके लिये दुःखी हो जाता है। इसी प्रकार यदि मालिककी कोठीका भार सँभाल कर वह काम करनेसे जी चुराता है, मालिकके नियमोंको तोड़ता है तो भी वह अपराधी होता है। अतएव मुनीमके लिये ये दोनों ही बातें निषिद्ध हैं।

इसी तरह यह समस्त जगत् उस परमात्माका है, वही यावन्मात्र पदार्थोंका उत्पन्न करनेवाला, नियन्त्रणकर्ता, सबका आधार और स्वामी है। उसीने हमको हमारे कर्मानुसार जैसी योनि, जो स्थिति मिलनी चाहिये थी, उसीमें उत्पन्न कर अपनी कुछ वस्तुओंकी सँभाल और सेवाका भार दे दिया है और हमारे लिये कर्तव्यकी विधि भी बतला दी है। परंतु हमने भ्रमसे परमात्माके पदार्थोंको अपना मान लिया है, इसीलिये हमारी दुर्गति होती है। यदि हम अपनी इस भूलको मिटाकर यह समझ लें कि जो कुछ है, सब उस परमात्माका ही है, हम तो उसके सेवकमात्र हैं, उसकी सेवा करना ही हमारा धर्म है तो वह परमात्मा हमें ईमानदार

समझकर हमपर प्रसन्न होता है और हम उसकी कृपा और पुरस्कारके पात्र होते हैं। मायाके बन्धनसे छूटना ही सबसे बड़ा पुरस्कार है। 'जो कुछ है सो परमात्माका है', इस बुद्धिके आ जानेपर ममता चली जाती है और 'जो कुछ है सो परमात्मा ही है' इस बुद्धिसे अहंकारका नाश हो जाता है—अर्थात् एक परमात्माको ही जगत्का उपादान और निमित्तकारण समझ लेनेसे उसमें ममता और अहंकार ( मैं और मेरा ) नष्ट हो जाते हैं। 'मैं-मेरा' ही वन्धन है। मुक्त जीव तो परमात्मासे कहता है कि वस, 'केवल एक तू ही है और सब तेरा ही है'।

यही अर्पण है, इस अर्पणकी सिद्धि हो जानेपर साधक बन्धनमुक्त हो जाता है, उसे किसी प्रकारकी कोई चिन्ता नहीं रहती। जो चिन्ता करता है, अपनेको बँधा हुआ मानता है, बन्धनसे मुक्ति चाहता है, वह वास्तवमें परमात्माके तत्त्वको जानकर उनके शरण नहीं हुआ। अपने उद्धारकी चिन्ता तो शरणागतिके साधकके चित्तसे भी चली जाती है। वास्तवमें बात भी यही है, शरण ग्रहण करनेपर भी यदि शरणागतको चिन्ता करनी पड़े तो वह शरण ही कैसी ? जो जिसकी शरण होता है, उसकी चिन्ता उस स्वामीको ही रहती है।

**जो जाको शरणो लियो, ता कहँ ताकी लाज।**
**उलटै जल मछली चले, बह्यो जात गजराज॥**

जब कबूतरके शरणापन्न हो जानेपर दया और शरणागत-वत्सलताके वशीभूत हो महाराज शिबि अपने शरीरका मांस देकर उसकी रक्षा कर सकते हैं, तब वह परमेश्वर जो अनाथोंका नाथ है, दयाका अनन्त अथाह सर्वोपरि सागर है, जगत्के इतिहासमें शरणागत-वत्सलता-की बड़ी-से-बड़ी घटना जिसकी शरणागत-वत्सलताके सामने सागरकी तुलनामें एक जलकणके सदृश भी नहीं है, क्या शरण होनेपर वह हमारी रक्षा और उद्धार न करेगा ? यदि इतनेपर हमारे मनमें अपने उद्धारकी चिन्ता होती है और हम अपनेको शरणागत भी समझते हैं तो यह हमारी नीचता है, हम शरणागतिका रहस्य ही नहीं समझते। वास्तवमें शरणागत भक्तको उद्धार होने-न-होनेसे मतलब ही क्या है, वह तो अपने आपको मन-बुद्धिसहित उसके चरणोंमें समर्पित कर सर्वथा निश्चिन्त हो जाता है। उसे उद्धारकी परवाह ही क्यों होने लगी ? शरणागतिके रहस्यको समझनेवाले भक्तके लिये उद्धारकी चिन्ता करना तो दूर रहा, वह इस प्रसङ्गकी स्मृतिको भी पसंद नहीं करता। यदि भगवान् स्वयं कभी उसे उद्धारकी बात कहते हैं तो वह अपनी शरणागतिमें त्रुटि समझकर लज्जित और संकुचित होकर अपनेको धिक्कारता है। वह समझता है कि यदि मेरे मनमें कहीं मुक्तिकी इच्छा छिपी हुई न होती तो आज इस अप्रिय प्रसङ्गके लिये अवसर ही क्यों आता ? मुक्ति तो भगवत्प्रेमका पासंगमात्र है, उस प्रेम-धनको छोड़कर पासंगकी इच्छा करना अत्यन्त लज्जाका विषय है। मुक्तिकी इच्छाको कलङ्क समझकर और अपनी दुर्बलता तथा नीचाशयताका अनुभवकर, भगवान्पर अपना अविश्वास जानकर वह परमात्माके सामने एकान्तमें रोकर पुकार उठता है कि—

'हे प्रभो ! जबतक मेरे हृदयमें मुक्तिकी इच्छा बनी हुई है, तबतक मैं आपका दास कहाँ ? मैं तो मुक्तिका ही गुलाम हूँ। आपको छोड़कर अन्यकी आशा करता हूँ, मुक्तिके लिये आपकी भक्ति करता हूँ और इतनेपर भी अपनेको निष्काम प्रेमी शरणागत भक्त समझता हूँ। नाथ! यह मेरा दम्भाचरण है। स्वामिन्! दया करके इस दम्भका नाश कीजिये। मेरे हृदयसे मुक्तिरूपी स्वार्थकी कामनाका मूलोच्छेद कर अपने अनन्य प्रेमकी भिक्षा दीजिये। आप-सरीखे अनुपमेय दयामयसे कुछ माँगना अवश्य ही लड़कपन है; परन्तु आतुर क्या नहीं करता ?'

इस तरहसे शरणागत भक्त सब कुछ भगवदर्पण कर सब प्रकारसे निश्चिन्त ही रहता है।

# काशीके तान्त्रिक आचार्य

( लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज )

[ भारतकी दिव्य ज्ञानमयी विभूति श्रद्धेय कविराजजीका १२ जूनको तिरोधान हो गया। खेद है कि उस समय उनकी विस्तृत श्रद्धाञ्जलि शाश्वतामें नहीं प्रकाशित हो पायी, जब कि उनकी कल्याणके प्रति अपार कृपा एवं आत्मीयता थी। वैसे तो वे अनेक विद्याओंके पारंगत विद्वान् थे, पर तन्त्रशास्त्र-के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि थी। गताङ्कमें 'मनुष्यत्व' पर एक लेख देनेके बाद यहाँ हम उनकी श्रद्धाञ्जलि-में तन्त्रपर भी उनका एक लेख प्रकाशित कर रहे हैं। इस लेखमें उनकी हार्दिक सरलता, तन्त्रशास्त्र एवं अन्य तान्त्रिक विद्वानोंके प्रति आदरबुद्धि देखते बनती है। आशा है, वे भगवद्विग्रहमें लीन होकर भी विश्वमें ज्ञान एवं श्रेयका प्रसार करेंगे।—सं० ]

काशीमें कई तान्त्रिक आचार्य हुए हैं, पर इनमें दो नाम विशेष रूपसे उल्लेख्य हैं—एक भास्करराय भारतीका और दूसरा पण्डित नीलकण्ठ चौधरी या चातुरध्वरिकका।

(१) भास्कररायका समय लोग प्रायः सोलहवीं शताब्दी मानते हैं। यह प्रसिद्ध है कि भास्करराय काशीस्थ भट्टवंशीय महापण्डित नारायणभट्टके समकालीन थे, परंतु यह कहाँतक प्रमाणित है, नहीं कहा जा सकता। इन नारायणभट्ट तथा ककुभाचार्यके विषयमें भास्कररायके प्रसङ्गपर जो विवरण किंवदन्तिके रूपमें प्रसिद्ध है, वह 'ललितासहस्रनाम'के भास्कर-भाष्यकी भूमिकामें उपलब्ध है। ये भास्करराय पण्डितप्रवर वाचस्पति मिश्र, विद्यारण्य तथा अप्पय दीक्षितके समान अद्वितीय विद्वान् थे। इन्होंने विभिन्न शास्त्रोंमें बहुसंख्यक पुस्तकोंकी रचना की थी, परंतु इनकी मुख्य कीर्ति है—तन्त्रशास्त्रमें 'सेतुबन्ध'। ये पूर्ण अभिषिक्त सिद्ध महा-पुरुष थे। इनकी प्रतिष्ठा इनके जीवनकालमें ही भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशोंमें फैल गयी थी। भास्कररायके पिताका नाम था गम्भीरराय दीक्षित और माताका नाम था कोणाम्बिका। इनका दीक्षा-नाम था भासुरानन्द या भास्करानन्दनाथ। इनके दीक्षागुरुका नाम नृसिंह शुक्ल था। इनकी दीक्षा सूरत-नगरमें हुई थी और पूर्णाभिषेक भी वहीं हुआ था। आचार्य विद्यारण्यके समान इन्हें भी श्रीदेवीके दर्शन होते थे। ये श्रीविद्याके उपासक थे और इन्होंने श्रीविद्या सम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंका निर्माण किया था। इन्होंने दीर्घकालपर्यन्त वाराणसीमें अवस्थान किया। इनके रचित तन्त्र-विषयक ग्रन्थोंके नाम निम्नलिखित हैं—

(१) भावना-उपनिषद्का भाष्य, (२) कौल-उपनिषद्का भाष्य, (३) त्रिपुरा-उपनिषद्का भाष्य, (४) ललितासहस्रनामका सौभाग्य-भास्कर-भाष्य, (५) सौभाग्यरत्नाम्बरकी टीका—सौभाग्यचन्द्रोदय, (६) नित्याषोडशीकार्णवकी टीका—सेतुबन्ध, (७) दुर्गासप्तशतीकी टीका 'गुप्तवती' (८) परशुरामकल्पसूत्रकी वृत्ति रत्नालोक, (९) वरिवस्यारहस्य, (१०) वरिवस्याप्रकाश तथा (११) नाथ-नवरत्नमाला-मञ्जूषा इत्यादि। प्रायः ये सभी ग्रन्थ भगवती ललिताकी आराधनाके मार्गदर्शक हैं। इनके अध्ययन एवं अनुसरणसे वे साधकपर तत्काल प्रसन्न होती हैं।

(२) पण्डितप्रवर नीलकण्ठ भास्कररायके बाद आविर्भूत हुए थे। इनका प्राकट्यकाल ईसवी सत्रहवीं शताब्दी है। इन्होंने सम्पूर्ण महाभारतपर 'भारतभावप्रदीप' नामकी टीका लिखी। इसका रचनाकाल १६०९ शकाब्दके निकट है। तन्त्रशास्त्रमें इन्होंने 'शिवताण्डव'की टीकाकी रचना की थी। इस टीकाका नाम 'अनूपाराम' है। यह टीका १६०२ शकाब्दमें अर्थात् १६८० ई०में लिखी गयी थी। इस शिवताण्डव नामक ग्रन्थमें अनेक तन्त्रोंका विस्तृत विवरण है। नीलकण्ठ चतुर्धरके पिताका नाम था गोविन्दसूरि। इन्होंने अपने ग्रन्थमें अपनेको पदवाक्य-प्रमाण-मर्यादा-धुरन्धर चतुर्धर वंशावतंस कहकर निर्देश किया है। नीलकण्ठ काशीमें रहते थे और यहीं रहकर ग्रन्थोंका निर्माण करते थे। परंतु इनके पूर्वपुरुष गोविन्द महाराष्ट्रके कुरपरनगर या कोपरगाँवमें निवास करते थे। यह स्थान गोदावरीतटपर अवस्थित था। यह सब नीलकण्ठके पौत्र शिवदीक्षितकृत 'धर्मतत्त्व-प्रकाश'में लिखा है। नीलकण्ठका गोत्र गौतम था और इनकी माताका नाम फुल्लाम्बिका था। इनके तीन अनुज थे, जिनके नाम क्रमशः शिव, कृष्ण और त्र्यम्बक थे। इनके पुत्रका नाम गोविन्द तथा पौत्रका नाम शिवदीक्षित था। ये गोदावरी-तटवर्ती प्रतिष्ठान (पैठण) नामक स्थानमें रहा करते थे और

धर्मतत्त्व-प्रकाशका निर्माण भी इन्होंने यहीं किया था। बीकानेर-नरेश अनुसिंह नीलकण्ठके आश्रयदाता थे। इनकी प्रेरणासे ही शिवताण्डवकी टीका लिखी गयी थी, इसलिये इस टीकाका नाम 'अनूपाराम' रखा गया था। तन्त्रशास्त्रके अतिरिक्त वेदान्त तथा पुराण-इतिहासमें भी नीलकण्ठके विभिन्न ग्रन्थोंका परिचय मिलता है। इन ग्रन्थोंमें वेदान्तकतक, मन्त्रशारीरक, शिवाद्वैतनिर्णय, मन्त्रभागवत टीका, नाम-मन्त्र-रहस्य प्रकाशिका, मन्त्ररामायण टीका, काशीखण्ड-की टीका तथा गणेशगीताकी टीका—ये सब प्रधान हैं।

( ३ ) ईसवी पञ्चदश शताब्दीमें राघवभट्टका नाम समग्र भारतमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है। ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। गोदावरीतटमें जनस्थान अथवा नासिक इनका आदि-निवास रहा। इनके पिता पृथ्वीधरभट्ट सबसे पहले स्वदेश त्यागकर स्थायीरूपसे वास करनेके लिये काशी आये। राघवभट्टका जन्म काशीमें ही हुआ था। पृथ्वीधरभट्ट बहुत शास्त्रोंके अलौकिक पण्डित थे। मीमांसामें भाट्टमतके ऊपर और व्याकरणमें पातञ्जलमहाभाष्यके ऊपर इनका अत्यन्त गम्भीर अधिकार था। ये इन शास्त्रोंके अध्यापक भी रहे। राघवभट्ट तन्त्रशास्त्रोंमें 'शारदातिलक' नाम तान्त्रिक ग्रन्थके टीकाकार थे। इस टीकाका नाम 'पदार्थादर्श' है। इस टीकाकी रचना विश्वेश्वरपुरी काशीधाममें ही विक्रम संवत् १५५० ( १४९३ ई० ) में पूर्ण हुई थी। तन्त्रशास्त्रमें इनकी व्युत्पत्तिका परिचय इस टीकासे स्पष्ट प्रतीत होता है। परंतु ये आचार्य बहुदर्शी पण्डित थे। तन्त्रशास्त्र या आगमशास्त्रके अतिरिक्त वेदान्त, भाट्टमीमांसा, गणित, साहित्य, कामशास्त्र, अग्निशास्त्र, आयुर्वेद, कला तथा संगीत प्रभृतिमें भी ये निष्णात थे। शकुन्तला, रामचरित, मालती-माधव प्रभृति ग्रन्थोंकी टीका भी राघवने काशीमें रहकर की थी।

( ४ ) महीधर—इसके बाद १६वीं शताब्दीमें महीधरका नाम उल्लेख योग्य प्रतीत होता है। महीधरका नामान्तर महीदास अथवा भूराल भी है। ये पहले अहिच्छत्रमें वास करते थे तथा वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पूर्व-पुरुष भी ईसवी ११७०में अहिच्छत्रमें ही वास करते थे। अहिच्छत्रका वर्तमान नाम रामनगर है, जो बरेलीसे बीस मील दूर पश्चिमकी ओर अवस्थित है। महीधरके पिताका नाम पुनु भट्ट था। महीधर रामके भक्त थे तथा नृसिंहदेवके भी उपासक थे। ये वैदिक तथा तान्त्रिक विद्यामें समान रूपसे अधिकार रखते थे। वेदमें इन्होंने शुक्लयजुर्वाजसनेयी संहिताके 'वेददीप' नामक भाष्यकी रचना की थी। 'चरणव्यूहकी' टीका और 'कात्यायन-सूत्र'की टीका बनाकर इन्होंने वैदिक मण्डलीमें पूर्णप्रसिद्धि अर्जित कर ली थी। तन्त्रशास्त्रमें इनके प्रधान ग्रन्थका नाम 'मन्त्रमहोदधि' है। इसकी टीका 'नौका' भी इन्होंने स्वयं ही बनायी थी। इसका रचना-काल विक्रम-संवत् १६४५ ( १५८८ ई० ) है। योगवासिष्ठका सार-संकलन महीधरने ही किया था। उस ग्रन्थका नाम 'योगवा-सिष्ठसार-विभूति' है। पुरुषोत्तमरचित 'विष्णुभक्ति-कल्पलता'के ऊपर भी उन्होंने एक टीका बनायी। उस समयके भक्ति-साहित्यके ऊपर इसका प्रभाव बहुत पड़ा था। प्रसिद्ध है कि 'बृहज्जातक' तथा 'लीलावती'के ऊपर भी इनकी टीका थी। यदि यह बात सत्य है तो गणित तथा ज्योतिषमें भी इनका पूर्ण प्रवेश था, यह बात माननी पड़ेगी। महीधर भट्ट स्वयं ही काशी आये थे। उनके पुत्र कल्लन सम्भवतः बाल्यावस्थामें उन्हींके साथ यहाँ आये। इसके बाद उनके परवर्ती वंशधर काशीमें ही स्थायीरूपसे वास करने लगे। महीधरके पुत्र कल्लनने 'बालतन्त्र' नामसे एक पुस्तक लिखी थी, पर यह आगमका नहीं, आयुर्वेदका ग्रन्थ है।

इसी प्रसङ्गमें श्रीनिवासभट्ट गोस्वामी या विद्यानन्द-नाथका नाम भी स्मरण आता है। दक्षिण भारतके द्रविड़ देशमें काञ्ची नगरीके दक्षिणमें अनन्त नामका एक ग्राम था। इस ग्रामके समीप एना नामकी एक नदी बहती थी, यही स्थान सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा ग्रन्थकार समरपुंगव दीक्षितकी निज भूमि रही। दीक्षितजी आत्रेय गोत्रके शुद्धाचारी ब्राह्मण थे। इनके पुत्रका नाम तिरुमल्लदीक्षित था, जो व्याकरण, मीमांसा और वेदान्तमें सुप्रवृष्ट रहे। इनके पुत्र श्रीनिकेतन और श्रीनिकेतनके पुत्र श्रीनिवास थे। श्रीनिवास तन्त्रशास्त्रके विशेषज्ञ थे। ये एक बार तीर्थयात्रा-प्रसङ्गमें उत्तर भारतमें जालंधर आये थे। वहाँ सच्चिदानन्द अथवा सुदुराचार्य नामके महातान्त्रिक सिद्ध पुरुषसे इनका परिचय हुआ। इनके जीवनपर उस महात्माका इतना प्रभाव पड़ा कि अन्तमें इन्होंने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। ये सच्चिदानन्दनाथ 'ललितार्चन-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थके रचयिता थे, ऐसा मालूम होता है। दीक्षाके बाद श्रीनिवासका गुरुप्रदत्त नाम हुआ 'विद्यानन्दनाथ'। गुरुके आदेशसे जालन्धर त्यागकर विद्यानन्द काशी आकर रहने लगे। आगमदर्शनके ऊपर इन्होंने चार ग्रन्थ निर्माण किये

थे, ऐसा उन्होंने स्वयं लिखा है। इन सब ग्रन्थोंकी रचना भी गुरुके आदेशसे हुई थी। उक्त चार सुप्रसिद्ध ग्रन्थोंके नाम निम्नलिखित हैं—(१) भैरवार्चा-पारिजात (यह भैरव-उपासनाके विषयका ग्रन्थ है), (२) 'सौभाग्य-रत्नाकर' (इसके ३६ अध्याय हैं, यह त्रिपुरा-उपासना-विषयका ग्रन्थ है), (३) 'सपर्याक्रम-कल्पवल्ली' (यह चण्डी-उपासना-विषयका है, इसमें ५ स्तबक हैं) और (४) शिवार्चनचन्द्रिका (यह अति विशाल ग्रन्थ है। इसमें ४६ अध्याय हैं। इसी ग्रन्थके आधारपर श्रीनिवासके पौत्र जनार्दनने 'मन्त्र-चन्द्रिका' नामके ग्रन्थका निर्माण किया था)।

अन्वेषणोंसे पता चलता है कि श्रीनिवासका बनाया हुआ एक और भी ग्रन्थ था। उसका नाम 'सौभाग्य-सुभगोदय' था। श्रीनिवासके पुत्र जगन्निवास भी तान्त्रिक थे। बहुत सम्भव है कि ये राघवके ही शिष्य हों। अनुमान किया जाता है कि उनके ज्येष्ठ पुत्र शिवानन्द स्वामी ही 'सिद्धान्त-सिन्धु' नामक विशिष्ट उपासना-ग्रन्थके रचयिता थे। सप्तदश शताब्दीमें नीलकण्ठ चतुर्धर तथा भास्करराय ने तन्त्र-साहित्यमें ग्रन्थ-रचनाकर विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

सप्तदश शताब्दीके अन्तमें और अष्टादशके प्रारम्भमें बालकृष्ण भट्टके पुत्र शंभुभट्टका नाम प्रसिद्ध है। ये शंभु-भट्ट काशीके प्रसिद्ध मीमांसक खण्डदेवके शिष्य थे। इनकी उपाधि 'कविमण्डन' थी। ये इसी नामसे प्रसिद्ध थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है—खण्डदेवरचित भट्टदीपिकाकी टीका 'प्रभावलि'। ये आचार्य संन्यास ग्रहण करनेके बाद शंकरानन्द नामसे प्रसिद्ध हुए थे। इनके संन्यास-गुरुका नाम रामानन्द सरस्वती था, जिनकी काशीखण्डकी व्याख्या अत्यन्त प्रसिद्ध और विद्वत्तापूर्ण है।

## साधु-संन्यासीको स्त्रीसे सदा दूर ही रहना चाहिये

भारतमें स्त्री-पुरुषोंका यावदर्थ न्यूनातिन्यून सम्पर्क एवं सनातनी, जैन तथा बौद्ध साधुओंका सभीसे सर्वथा दूर रहना यह परम्पराका सदाचार तथा संततिनियमनका भी सर्वोत्तम आदर्शभूत उपाय था। इसके अनेक रोचक उदाहरण हैं। इस विषयमें चैतन्य-महाप्रभुका एक प्रसङ्ग विशेष स्मरणार्ह है। कहते हैं कि जब वे संन्यास लेकर जगन्नाथपुरी आये तो उनके साथ उनके अनेक गृहस्थ-विरक्त भक्त भी बंगालसे आकर रहने लगे। विरक्त भक्तोंमेंसे छोटे हरिदासजी भी एक थे। ये संगीतज्ञ थे और मधुर कीर्तनसे महाप्रभुको प्रसन्न करते थे। इसलिये लोग इन्हें 'कीर्तनिया हरिदास' भी कहते थे। महाप्रभुके पुरीमें कुछ गृहस्थ भक्त भी थे, जिनमें जगन्नाथ-मन्दिरके हिसाब लिखनेका काम करनेवाले शिखि माहिती, उनके अनुज मुरारि और उनकी विधवा बहिन माधवी—ये तीन विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें भी शिखि माहिती और माधवीदेवीको तो महाप्रभु भगवत्कृपाप्राप्त भागवतोंमें गिनते थे।

यहाँके भक्त प्रायः महाप्रभुको भिक्षाके लिये भी आमन्त्रित करते। एक दिन जब महाप्रभु भगवानाचार्यके यहाँ भिक्षाके लिये पधारे, तब वहाँ सुगन्धित सुन्दर चावल बने देखकर उन्होंने पूछा—'आपने ये उत्तम चावल कहाँसे मँगाये हैं?' भगवानाचार्यने कहा—'प्रभो! माधवीदेवीके यहाँसे ये आये थे।' इसपर महाप्रभुने जब चावल लानेवालेका नाम जानना चाहा तो छोटे हरिदासका नाम आया। यह सुनकर महाप्रभु चुप हो गये। भिक्षा-ग्रहण करनेका जैसे उनमें उत्साह ही नहीं रहा। भगवत्प्रसाद समझकर कुछ ग्रास मुखमें डालकर वे उठ गये और अपने स्थानपर आकर बोले, 'बस, आजसे छोटा हरिदास मेरे यहाँ कभी न आये।' अब तो महाप्रभुके सेवक स्तब्ध रह गये। श्रीपरमानन्दपुरी आदि सभी प्रेमियोंने महाप्रभुसे बहुत कहा—'हरिदासको क्षमा कर दीजिये', परंतु महाप्रभुने अत्यन्त रुक्ष-भङ्गी बना ली और वे पुरी छोड़कर अन्यत्र जानेको उद्यत हो गये। छोटे हरिदासने भी दुःखी होकर अन्न-जल त्याग दिया, परंतु महाप्रभुपर कोई प्रभाव न पड़ा। कहते हैं, अन्तमें दुःखी होकर छोटे हरिदासने प्रयाग पहुँचकर गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें अपना देहत्याग कर दिया। जब महाप्रभुको यह समाचार मिला तो उन्होंने कहा—'साधुका स्त्री-सम्पर्क सर्वथा महापाप है। हरिदासने उचित ही प्रायश्चित्त किया है।' इन्हीं महाप्रभुने एक बार सार्वभौम भट्टाचार्यसे भी कहा था कि 'स्त्री तथा विषयियोंका सम्पर्क साधुके लिये तो विषपानसे भी गर्हित कार्य है'—

निष्किंचनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
संदर्शनं विषयिणामथ योषितां च हा हन्त! हन्त! विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

(चैतन्यचन्द्रोदय ८।२३)

# परमार्थकी पगडंडियाँ

( नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अमृत-वचन )

## सद्गुरु

आजकल चारों ओर गुरुओंकी भरमार है, कौन सद्गुरु हैं, कौन नकली हैं—इसका पता लगना सहज नहीं है । इस स्थितिमें किसी अंधेके हाथमें लकड़ी पकड़ा देनेवाले अंधेकी जो दुर्दशा होती है, वही इन गुरु-शिष्योंकी होती है । अतएव वर्तमान समयमें गुरुकरण बहुत ही जोखिमकी चीज है । भगवान् सहज जगद्गुरु हैं, उन्हींका आश्रय ग्रहण करना चाहिये ।

आज जिस प्रकार दम्भ-छल-कपट चल रहा है, चारों ओर जो अधःपतनकी धूम मची है, इसमें किसीको गुरु स्वीकार करके उसे अपना सर्वस्व मानना, उसकी एक-एक बातको ईश्वर-वाक्य मानकर स्वीकार करना और उसे तन-मन-धन सौंप देना बुद्धिमानीका काम नहीं है । इसमें बहुत अधिक धोखेकी सम्भावना है । खास करके, स्त्रियोंको तो इससे अवश्य ही बचना चाहिये ।

## सदा सावधान रहिये

साधु-सेवा करना तथा साधु-सङ्गसे लाभ उठाकर भगवान्के भजनमें प्रवृत्त होना तो मनुष्यमात्रके लिये आवश्यक कर्तव्य है, पर जहाँ स्त्री तथा शरीर-पूजाकी माँग हो, वहाँ सावधान हो जाना चाहिये, चाहे वहाँ भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन करानेकी ही बात कही जाती हो ।

संध्या-वन्दन प्रतिदिन कम-से-कम दोनों समय करना चाहिये । कम-से-कम एक माला गायत्रीका जप द्विजमात्रको करना चाहिये । जो महात्मा संध्या-गायत्रीके त्याग, सदाचारके त्याग तथा शास्त्रोंको न माननेका आदेश देते हैं, उनसे भी सावधान रहना चाहिये । फिर जो असत्य तथा छलका उपदेश देते हों, सदाचारके त्यागको तथा यथेच्छाचारको ही प्रेम बताते हों, भगवान्के नामके बदले अपने नाम तथा भगवान्के स्वरूपके बदले अपने स्वरूपका ध्यान करनेकी बात कहते हों, उनसे तो विशेष सावधान रहना है ।

समय कलियुगका है । सभी ओर दम्भ छाया है । भेड़की खालमें भेड़िये भी घुस गये हैं । संतके नामपर लोभी, लालची भी अब सर्वत्र फैल रहे हैं । साहूकारके नामसे चोरोंका भी बाजार चल रहा है । अतः इस समय विशेष सावधानी रखिये ।

भगवान्का भजन कीजिये । सदाचारका पालन कीजिये । माता-पिताकी सेवा कीजिये । प्रभुप्रीत्यर्थ घरका काम सचाई, ईमानदारी तथा परिश्रमसे कीजिये । इसीमें कल्याण है ।

## सुखी और श्रेष्ठ मनुष्य

वही मनुष्य श्रेष्ठ है और वही वस्तुतः सुखी है, जो बड़े-से-बड़े विरोधी स्वभाववाले प्राणी-पदार्थके स्वभावसे अपने स्वभावको विचलित नहीं होने देता । जिसका स्थिर, शान्त, प्रेमपूर्ण उदार स्वभाव किसी भी परिस्थितिमें डिगता नहीं, वरं अपनी सत्य, सुन्दर स्वभाव-निष्ठासे जो विरोधी स्वभाववालेको अनुकूल बना लेता है, जिसका चित्त विरोधी स्वभावके प्राणी-पदार्थोंके सामने आनेपर क्षुब्ध हो जाता है, चञ्चल होकर विकारी बन जाता है और विरोधीके प्रति घृणा करके उसका अनिष्ट-चिन्तन करने लगता है, ऐसे निर्बल चित्तका मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता और न वह परमार्थ-

साधनके मार्गपर ही आगे बढ़ सकता है । दूसरेके स्वभावको सहन करके उसका हितचिन्तन करनेवाला मनुष्य भगवान्के मार्गपर निश्चित आगे बढ़ता है । कदाचित् ऐसा न हो और किसीका स्वभाव इतना दूषित जान पड़े कि उसका सहन करना असह्य हो जाय तो वहाँ करुण-हृदयसे करुणामय भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये कि 'प्रभो ! इस भूले हुए प्राणीको आप सद्बुद्धि दें, जिससे इसके दुःखोंका नाश तथा इसका परम हित हो और मेरे स्वभावको ऐसा निर्मल तथा सुदृढ बना दें कि वह किसी भी स्थितिमें आपकी मधुर स्मृतिको छोड़कर—किसी स्वभावके कारण पूर्ण क्षुब्ध न हो । हृदयकी सच्ची प्रार्थनाको भगवान् पूरी करते हैं ।

जो सबके स्वभावके अनुकूल होकर सबसे हिल-मिलकर रहता है, काम-क्रोध-लोभ, भय-विषाद आदि जिसके चित्तको कभी चलायमान नहीं कर सकते, किसीसे भी किसी प्रकारके सुखकी आशा न करके जो सबकी सेवा करता है; सबको सुख पहुँचाता है तथा सबके साथ रहते हुए ही जो नित्य-निर्विकार, शान्त तथा आनन्दमग्न रह सकता है, वही सच्चा साधक है और वही नित्य-सुखके मार्गपर आरूढ है । समस्त चराचर संसार मङ्गलमय भगवान्की अभिव्यक्ति है और सारे भावोंके मूल उद्गम भगवान् ही हैं । यहाँ जो कुछ है, भगवान् हैं; जो कुछ हो रहा है, भगवान्की लीला है । इन सभीमें आनन्दमय भगवान् भरे हैं, यों मानकर जो प्रत्येक परिस्थितिमें, प्रत्येक संयोग-वियोगमें, प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल स्वभावमें क्षोभरहित, निर्विकार, शान्त और सुखी रह सकता है, वही सुखी है और उसीको परम सुखरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है । आप ऐसा करेंगे तो सुखी हो जायँगे, यह निश्चित है ।

## भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं

हमको भगवान् इन आँखोंसे चाहे न दिखायी दें, पर यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि हमारे पास वे सदा-सर्वदा रहते हैं । वे कभी भी हमको छोड़कर अलग नहीं होते । पर हमारा पूरा निश्चय न होनेसे हम भूले हुए हैं, इसीसे अशान्तिका अनुभव करते हैं । हीरोंका हार अपने गलेमें ही है । वह कपड़ोंसे ढका है । इस बातको भूल जानेसे मनुष्य उसे बाहर ढूँढ़ता है और न मिलनेपर वह दुःखी होता है । जब याद आ गया, बस कपड़ा हटाकर देख लिया कि हार मिल गया । इसी प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं—हृदयमें विराजमान हैं । ( केवल निर्गुण निराकाररूपसे ही नहीं, हमारे जाने-माने हुए दिव्य सगुण-साकाररूपमें भी । ) विश्वास कीजिये 'वे सदा साथ रहते हैं ।' इसके बाद निश्चय होगा कि 'रहते ही हैं ।' अतएव उनकी इच्छा होगी, तब 'दीखने भी लगेंगे ।' यह उनकी इच्छापर छोड़ दीजिये । वे सदा साथ रहते हैं, यही क्या उनकी कम कृपा है । उनकी यदि स्वप्नमें भी झाँकी होती है तो यह बड़ा सौभाग्य है, यह उनकी महती कृपा है ।

कदाचित् ऐसी बात न जँचे, यद्यपि है तो यह परम सत्य ही, तो उनके न मिलनेसे उनके वियोगमें—विरहमें जो उनका पल-पलमें स्मरण होता है, वह क्या कम सौभाग्य है ? उसमें क्या उनकी कम कृपा है ? वे नहीं चाहते तो न मिलें, न दर्शन दें, बड़े-से-बड़ा दुःख दें, पर वह दुःख यदि नित्य उनका मधुर-मधुर स्मरण कराता हो तो क्या हमारी यह चाह नहीं होनी चाहिये कि उनके इस मधुर-मधुर स्मरण-सुखका महान् आनन्द, महान् सौभाग्य प्रतिक्षण मिलता रहे, फिर वह चाहे वियोग-जनित दुःखसे ही मिलता हो । वह दुःख वस्तुतः परमानन्दरूप है, जो नित्य-निरन्तर प्राण-प्रियतम प्रभुकी स्मृति कराता है ।

# श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण

( लेखक—पं० श्रीतारिणीशजी झा )

महामुनि वेदव्यासका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ श्रीमद्भागवत अपनी अमित महिमा और असाधारण गरिमाके कारण —'विद्यावतां भागवते परीक्षा'—इस आभाणकको सत्य सिद्ध करते हुए विद्वत्समाजमें सदासे ही आदरणीय रहा है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् परब्रह्म परमात्माके पूर्णावतारके रूपमें प्रतिपादित किया गया है। श्रीमद्भागवतके सुप्रसिद्ध टीकाकार :श्रीधर स्वामीने लिखा है—

**कृषिर्भूवाचकः शब्दः णश्च निवृत्तिवाचकः।**
**तयोरैक्यात् परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥**

अर्थात् 'कृष्' धातुसे 'नक्' प्रत्यय तथा णत्व करनेपर 'कृष्ण' शब्दकी निष्पत्ति होती है। यहाँ 'कृष्'का अर्थ है—संसार और 'ण'का अर्थ है—निवृत्ति; छुड़ाना। इन दोनोंमें ऐक्य स्थापित हो जानेसे कृष्णका अर्थ परब्रह्म होता है। क्योंकि परब्रह्म या परमात्मा ही जीवोंको संसारसे छुड़ाता है।

## श्रीकृष्ण पूर्णावतार थे

यद्यपि—

**एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी।**
**रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद् भरम्॥**
( श्रीमद्भा० १।३।२३ )

—इस भगवद्वचनके अनुसार श्रीकृष्ण परब्रह्मके बीसवें अवतार थे, किंतु—

**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**
( श्रीमद्भा० १।३।२८ )

—इस भागवत-सिद्धान्तके प्रामाण्यसे ये पूर्णावतार थे। क्योंकि जैसे परब्रह्मका स्वभाव युगपद् विरुद्धधर्माश्रयी है, उसी तरह श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरित्र भी पग-पगपर विरुद्धधर्मी हैं। परब्रह्मके स्वभावका विरुद्धधर्माश्रयत्व सिद्ध करनेवाली श्रुतियाँ ये हैं—

**'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** ( कठोप० १।२।२० ), **'नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च'** ( शुक्लयजु० १६।३० ), **'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च'** ( वही १६।३२ ), **'तदेजति तन्नैजति'** ( वही ४०।५ ),

**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता**
**पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।**
**स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति**
**वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥**
( श्वेताश्व० उप० ३।१९ )

—इत्यादि।

अब भगवान् श्रीकृष्णके विरुद्ध धर्मोंपर भी दृष्टिपात करें। कहाँ तो उनकी असमर्थता और अङ्गोंकी कोमलता इतनी थी कि जब वे बछड़ेकी पूँछ पकड़ते तो बछड़े उन्हें कहीं-से-कहीं खींच ले जाते, यथा—

**'वत्सैरितस्तत उभावपि कृष्यमाणौ'**
( श्रीमद्भा० १०।८।२४ )

और कहाँ उनमें सामर्थ्य इतनी थी कि अपनी क्रीडामें उन्होंने समस्त व्रजको ही फँसा लिया—

**कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम्।**
( श्रीमद्भा० १०।८।२८ )

वे हल्के तो ऐसे थे कि यशोदाजी उन्हें गोदमें लेकर दूध पिलाती थीं, पर उसी शैशवमें वे भारी भी इतने हुए कि पूतना राक्षसी और तृणावर्त राक्षसको भी ले बीते। उन्होंने ब्रह्माजीको उसी क्षण अपने ही स्वरूपमें एकत्व तथा अनेकत्व, द्विभुजत्व तथा चतुर्भुजत्व दिखलाया। इस प्रकार विरुद्धधर्माश्रयत्व जो परब्रह्मका ही चिह्न है, भगवान् श्रीकृष्णमें कूट-कूटकर भरा था।

**'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय'**

यह ब्रह्मकी इच्छा है और भगवान् श्रीकृष्णने भी रासलीलाके समय तथा द्वारकामें रनिवासमें अनेक रूप

धारण करके विहार किया था। यह भी पूर्णताका सूचक है।

परमात्मा अपनी इच्छासे अपनेमें ही प्रपञ्चका प्रादुर्भाव करते हैं, यह ब्रह्मकी पूर्ण शक्ति है। सो भगवान् श्रीकृष्णने भी दो बार यशोदाको अपने मुखारविन्दमें त्रिभुवनका दर्शन कराया था—

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम्।
मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम्॥
खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि॥
(श्रीमद्भा० १० । ७ । ३५-३६)

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम्॥
(श्रीमद्भा० १० । ८ । ३७)

—इत्यादि। और गीता ११। ७में श्रीकृष्णने अर्जुनको भी अपने स्वरूपमें सम्पूर्ण विश्व दिखा दिया—

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि॥

इस प्रकार विराट् विश्व दिखलानेसे प्रभु श्रीकृष्णकी पूर्णब्रह्मता सिद्ध होती है। भागवतमें तो जगह-जगह उनकी पूर्णब्रह्मताके द्योतक श्लोक मिलते ही हैं, अन्यत्र भी—अथर्ववेदीय गोपालतापनी उपनिषद्, कृष्णोपनिषद् एवं नाना पुराणोंमें श्रीकृष्णका पूर्णब्रह्मत्व स्पष्टरूपसे प्रतिपादित किया गया है।

### अनुचित आक्षेप

कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि श्रीकृष्ण विषयासक्त थे। इसीसे उन्होंने विहार-लीला की। अतएव उन्हें भगवान्‌का पूर्णावतार मानना ठीक नहीं है। परंतु यह आक्षेप सर्वथा असंगत है। क्योंकि पूर्णकाम पुरुषोत्तमने केवल जीवोंपर अनुग्रह करके ही अवतार ग्रहण किया है और ऐसी लीलाएँ कीं, जिनके श्रवणसे मुक्त, मुमुक्षु, विषयी—इन सभी प्रकारके जीवोंके चित्तका आकर्षण हो, जैसा कि भागवतकारने लिखा है—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥
(श्रीमद्भा० १० । ३३ । ३७)

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥
(श्रीमद्भा० १० । २९ । १५)

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥
(श्रीमद्भा० १० । २२ । २६)

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-
व्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम्।
सम्मुह्य चापमजहात् प्रमदोत्तमास्ता
यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः॥
(श्रीमद्भा० १ । ११ । ३६)

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम्।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः॥
(श्रीमद्भा० १ । ११ । ३७)

उपर्युक्त श्लोकोंसे सिद्ध होता है कि सच्चिदानन्दघन परमात्माके अवतार श्रीकृष्णमें विषयासक्तिकी सम्भावना नहीं है। और फिर आगे भी इसीसे तो श्रीशुकाचार्यने पदे-पदे कहा है कि भगवान्‌ने आत्माराम होते हुए भी रमण किया—

'आत्मारामोऽप्यरीरमत्'
(श्रीमद्भा० १० । २९ । ४२)

'रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः।'
(श्रीमद्भा० १० । ३० । ३५)

'सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः'
(श्रीमद्भा० १० । ३३ । २६)

'रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः'
(श्रीमद्भा० १० । ३३ । २४)

'यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः'
(श्रीमद्भा० १० । ३३ । १७)

—इत्यादि।

# कालका प्रभाव एवं उसकी परिगणन-प्रक्रिया

( लेखिका—सुश्रीकुमारी स्नेहलता, एम्० ए० )

मीमांसकोंके अनुसार सभी फल केवल कर्मके अधीन हैं। जो जैसा कर्म करता है, देर या सवेर उसे वैसा ही फल मिलता है—

'जो जस करइ सो तस फलु चाखा।'

( मानस० २। २१८। २ )

इनके अनुसार अद्भुत अच्छे या बुरे फल भी जिनका कोई तात्कालिक हेतुभूत कर्म नहीं दीखता, पूर्व जन्मोंके कर्मोंके परिणाम हैं। प्रारब्ध, अदृष्ट, दिष्ट, भाग्य, दैव या अपूर्व भी पहलेके किये हुए कर्मोंके नामान्तर हैं।

इसी प्रकार कणादादिके अनुयायी वैशेषिकके विद्वानोंका कथन है कि अणु एवं सामान्य विशेष द्रव्योंका समवाय ही विश्वके पालन, संचालन, निर्माण एवं संहार आदिके कारण हैं। इधर कपिलके अनुयायी तथा शाक्त तान्त्रिकोंका मत है कि प्रकृति या महाशक्ति ही विश्वकी उत्पादिका एवं नियामिका शक्ति है। इसी प्रकार पाशुपत आगमवाले पशुपति शिवको, दूसरे लोकायतिक आदि गुण एवं स्वभावको विश्वचक्रके उत्पादन-संचालनका कारण मानते हैं। आचार्य वराहमिहिर एवं उत्पल भट्टके अनुसार पौराणिक विद्वान् कालको ही सभी कारणोंका भी कारण मानते हैं। इधर ज्योतिषियोंका भी यही मत है—

कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य।
कालं कारणमेके स्वभावमपरे जगुः कर्म॥

( बृहत्संहिता १। ७ )

यद्यपि कोशकारोंने काल शब्दके प्रायः २० अर्थ माने हैं, पर यहाँ इसका तात्पर्य समय एवं समयरूपी महाकाल परमात्मासे ही है। इसीलिये भर्तृहरिने उपर्युक्त सभी कारणोंका समन्वय करते हुए कहा था—

भाग्यानि पूर्वतपसा किल संचितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः।

( नीतिशतक ९७ )

भारतीय विद्वानोंने इसपर गम्भीर विचार किया है। वे कालको परमात्मस्वरूप, अनादि एवं अत्यन्त विशाल मानते हैं। आधुनिक ज्योतिर्विज्ञानके अनुसार यह विश्व बहुत ही विस्तृत तथा व्यापक है। इसके व्यासकी लंबाई करोड़ों किरण[1] वर्षोंकी मानी जाती है। आकाशमें जो वाष्प-पुञ्ज दृष्टिगोचर होता है, उसके एक-एक कणसे एक-एक सौ करोड़ सूर्योंकी सृष्टि हो सकती है। परमात्मरूप कालकी इस विशालताको समझनेमें कल्पना-शक्ति पराभूत हो जाती है। इसका वर्णन पुराणोंमें आया है। यदि इस विशालताका समर्थन आधुनिक विद्वान् न करते तो सम्भव है हम इसे कपोल-कल्पनामात्र समझते।

विष्णु-पुराणमें विश्वकी विशालताका विशद वर्णन है। इसके अनुसार यह पृथ्वी एक लोक है। ऐसे अनेक लोकोंका एक ब्रह्माण्ड होता है और सम्पूर्ण विश्वमें करोड़ों ब्रह्माण्ड सम्मिलित हैं। विश्व-सृष्टिके कालके मापके लिये ब्रह्माका एक दिन या कल्प मापदण्ड माना गया है।

## वेदोंमें कालोल्लेख

ऋग्वेदके अनुसार कालकी उत्पत्ति ब्रह्मसे हुई है। ऋग्वेदके अघमर्षण-सूक्तमें कालको भी एक पदार्थ कहा गया है, जिसका चित्रण ऋतु, मास, दिवस, रात्रि आदिमें हुआ है—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो राव्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥

( ऋग्वेद १०। १९०। १-२ )

तेजोमय तपके द्वारा यज्ञ और सत्यकी उत्पत्ति हुई। ऋतु और मासकी ब्रह्मसे उत्पत्ति हुई। फिर दिवस और रात्रि उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् जलसे परिपूर्ण समुद्र उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् संवत्सरकी उत्पत्ति हुई। निमिष आदिसे युक्त विश्वके ईश्वर ही अधिपति हैं।

अन्यत्र कतिपय स्थलोंमें सात घोड़ोंके रूपमें सात महीनोंका उल्लेख है—

१—एक किरण-वर्ष ५८,७५,९४,५२,००,००० मीलके बराबर है। किरणकी गति प्रति सेकेण्ड १,८६,३२५ मील है। इसीलिये एक वर्षमें किरण-गति ६०×६०×२४×३६५×१८६३२५ मील=५८,७५,९४,५२,००,००० मील है।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
शोचिष्केशं विचक्षण। (ऋग्वेद १। ५०। ८)

यहाँ सूर्यके सात पहियोंवाले रथमें सात घोड़ोंका और कहीं सात घोड़ियोंका उल्लेख है।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः।
(वही १। ५०। ९)

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें वर्षका वर्णन इस प्रकार है—आकाशके दूसरे भागमें बारह रूपों ( महीनों ) और पाँच पैरों ( ऋतुओं ) वाला ( मायासे ढके हुए ) विश्वका पिता है। दूसरे कहते हैं, इधर दीखनेवाले आधेमें सात पहियों ( किरणों ) और छः ऋतुओंवाले रथमें एक विचक्षण दूरदर्शी बैठा है।

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम्॥
( १। १६४। १२ )

दास आदि भारतीय विवेचक यहाँ वर्षके दो भाग मानते हैं। एक भाग वह, जिसमें वर्षा-ऋतु अन्तर्भूत होती थी और सूर्य मेघरूपी मायासे ढक जाता था। दूसरा वह था, जब वर्षा-ऋतु समाप्त हो चुकती थी और सूर्य प्रचक्षण हो जाता था। यहाँ वर्षका पूर्वार्ध पाँच महीनोंका और उत्तरार्ध सात महीनोंका हो जाता है। इसमें नाना वपुवाले दिन और रातका भी उल्लेख है।

अथर्ववेदके उन्नीसवें काण्डके ५३वें, ५४वें सूक्तोंमें कालका देवताके रूपमें वर्णन है। महर्षि भृगुने गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती और त्रिष्टुप् छन्दोंमें कालका विस्तारसे वर्णन किया है। समस्त वस्तुओंको व्याप्त कर लेनेवाला वह काल सप्तरश्मि एवं सहस्र नेत्रवाला नित्य युवा अश्व है। वह प्रभूत वीर्यवान् है। उसके ( द्वारा संचालित रथके ) चक्र हैं—ये समस्त लोक। कालात्मक संवत्सरके परिवर्तनके साथ ऋतुओंका क्रमशः प्रादुर्भाव होता है। यह काल ब्रह्मरूप है; क्योंकि यह चराचरात्मक विश्वको रचता है और फिर यही इसका नाश करता हुआ स्थिर बना रहता है।[2] संसारके कारणभूत परमेश्वर कालसे व्याप्त है। वह कालरूप परमात्मा प्राणियोंको उत्पन्न करता है। वही भुवन रूपसे स्थित है। इस कालकी अपेक्षा अधिक तेजस्वी अन्य कोई पदार्थ नहीं है। भूत, भविष्य और वर्तमान भी इस कालके ही आश्रित हैं। इन्द्रियोंका अधिष्ठाता ( देवगण ) कालमें ही अपनी इन्द्रिय-संचालन आदि क्रियाओंको करता है। काल ही तप है, उसीमें सर्वविध ज्ञान प्रतिष्ठित है। काल सभीका ईश्वर, पिता और प्रजापति है। यह जगत् कालसे ही उत्पन्न होकर कालमें ही प्रतिष्ठित है। कालने ही प्रजापतिको उत्पन्न किया और फिर प्रजाओंकी रचना की। वह काल स्वयम्भू है। काल ही ब्रह्म होता हुआ परमेष्ठी ब्रह्माको धारण करता है[3]।

इसी प्रकार 'शतपथ-ब्राह्मण'में द्वादश आदित्योंका वर्णन किया गया है। ये आजकल माने जानेवाले बारह महीनोंके कारण माने गये हैं। इसका वर्णन शतपथ ब्राह्मणके ११। ६। ३। ८ में उपलब्ध है—

कतम आदित्या इति। द्वादश मासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदꣳ सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति।

अर्थात् संवत्सरसे सम्बन्धित चैत्रादि बारह मास ही आदित्य हैं।

अन्यत्र भी संवत्सरको प्रजापतिरूपमें स्वीकार किया है—
संवत्सरो वै प्रजापतिरग्निः सोमो राजा कामाः सोयꣳ संवत्सरः प्रजापतिः।
( शतपथब्राह्मण १०। ४। ३। १ )

यह संवत्सर स्वयंको सौ रूपोंमें विभाजित कर समस्त कामनाओंको वशीभूत करता है। समस्त कामनाएँ उसीके अन्तर्गत हैं। संवत्सरको ही यहाँ आदित्यरूप बतलाया गया है—

स यः संवत्सरोऽसौ स आदित्यः।
( शतपथब्राह्मण १०। ४। ९। ३ )

वह संवत्सर ही समस्त भूतोंका निरीक्षण करता है।
तानि संवत्सरे दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि सम्पद्यन्त—
( शतपथ ब्रा० १०। ४। २। २० )

२—सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः। स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः॥
अथर्ववेद १९। ५३। २ )

३—काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम्। कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः॥
( अथर्ववेद १९। ५३। ३८ )

अथ सर्वाणि भूतानि पर्यैक्षत् । स त्रय्यामेव विद्यायां सर्वाणि भूतान्यपश्यत् ।

अर्थात् वह संवत्सर ही समस्त प्राणियोंका, समस्त छन्दोंका, सभी स्तोत्रोंका एवं प्राणोंका भी आत्मा है ।

( वही १० । ४ । २ । २१ )

## उपनिषदोंमें कालचर्चा

बृहदारण्यक उपनिषद्में भी संवत्सरको प्रजापतिके आत्मारूपसे स्वीकार किया है—

एवंरूपो हि प्रजापतिः, विष्णुत्वादिकरणमिव प्रतिमादौ । सूर्यश्चक्षुः शिरसोऽनन्तरत्वात् सूर्याधिदैवतत्वाच्च ।

( बृह० उप० शांकरभाष्य १ । १ । १ )

अर्थात् इस प्रजापतिका नेत्र सूर्य है, उसका प्राण वायु है और उसका आत्मा संवत्सर है । वह संवत्सर बारह या तेरह महीनोंका है ।

'कैवल्योपनिषद्'में ब्रह्मको ही कालरूपसे स्वीकार किया है—

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः सं कालोऽग्निश्च चन्द्रमाः ॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥

( कैवल्योपनिषद् १ । २ । ९ )

अर्थात् उसीको ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अक्षर, परम, स्वराट्, विष्णु, प्राण, काल, अग्नि और चन्द्रमा कहते हैं, जो कुछ पहले हो चुका है अथवा आगे होगा, वह सब वही है । उसको जान लेनेपर व्यक्ति मृत्युसे छूट जाता है, मुक्तिकी प्राप्तिके लिये इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

अन्यत्र कालके अंशों अर्थात् दिन और मासका वर्णन है—

तावन्तं च पुनः कालं सौम्ये चरति संततम् ।
इत्थं क्रमेण चरता वायुना वायुजिन्नरः ॥
अहश्च रात्रिं पक्षं च मासं मत्वायनादिकम् ।
अन्तर्मुखो विजानीयात् कालभेदं समाहितः ॥

( त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् ११८ । ११९ )

अर्थात् जब प्राणायाम करनेवाला योगी प्राणजित् हो जाता है, तब वह दिन, रात्रि, पक्ष, मास और अयन आदिके काल-भेदको अन्तर्मुख होकर जानने लगता है—

सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि कलाकाष्ठादिकालरूपिणी । तामहं प्रणौमि नित्यम् ।

( देव्युपनिषद् १८ )

अर्थात् वह देवी ग्रह, नक्षत्र, ज्योति, कला, काष्ठा आदिसहित कालस्वरूपा है । उसको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ।

प्रश्नोपनिषद्में कालको प्रजापति बतलाया गया है—

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥

( १ । १२ )

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ॥

( १ । १३ )

अर्थात् संवत्सर ही प्रजापति है । वह दो अयनोंवाला है । एक अयन दक्षिण है और दूसरा उत्तर । महीना प्रजापति है । शुक्लपक्ष ही प्राण है । दूसरा कृष्णपक्ष रयि है । जिसमें सांसारिक भोगोंसे सम्बन्धित कर्म किये जाते हैं । दिवस और रात्रि भी प्रजापति है ।

इस प्रकार उपनिषदोंमें विभिन्न रूपोंसे कालका वर्णन है । कहीं कालकी उत्पत्तिकी चर्चा है, कहीं उसके स्वरूपका उल्लेख है । कहीं ब्रह्मको ही कालरूपसे स्वीकार किया है ।

## स्मृतियोंमें कालकी महत्ता

स्मृतियोंमें यद्यपि स्पष्टरूपसे कालकी महत्ताका वर्णन नहीं है, तथापि कार्योंमें मध्याह्नकाल आदिकी आवश्यकताका निर्देश है । 'औशनसस्मृति'में गायत्रीका वर्णन करते हुए प्रकृति, काल आदि की चर्चा की गयीहै —

प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः कामा व्याहृतयस्त्रयः ॥

( औशनस० १५९ )

अर्थात् पहले कल्पमें भूर्भुवः और स्वः इन नामोंसे तीन महाव्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं । वे तीनों ही प्रधान, पुरुष, कालरूप—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वररूप—इन तीन ( अर्थात् धन-पुत्र-लोककी एषणाएँ वा इच्छाएँ ) रूपोंवाली हैं ।

'मनुस्मृति'में कालकी उत्पत्तिका वर्णन इस प्रकार है—

कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागराञ्छैलान् समानि विषमाणि च ॥

( १ । २४ )

अर्थात् उस परमात्माने कालको, कालके विभागोंको, नक्षत्रोंको, नदियोंको तथा सम और विषम स्थलोंकी सृष्टि की ।

'याज्ञवल्क्यस्मृति'में भी कालका वर्णन श्राद्धके प्रसङ्गमें किया है—

श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ।

( याज्ञ० स्मृ० १ । २१८ )

अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् ।
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत् सूर्यसंक्रमः ॥

( वही १ । २१७ )

अर्थात् दोनों अमावस्याएँ, सभी अष्टकाएँ, तिथिवृद्धि, दोनों अयन, द्रव्य या ब्राह्मणकी सहसा उपस्थिति एवं विषुवत् संक्रान्ति—ये श्राद्धकाल हैं ।

'विष्णु-स्मृति'में कालका वर्णन निम्न प्रकारसे हुआ है—

अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।
आज्यनासः श्रवस्तुण्डः सामघोषमहास्वनः ॥

( १ । ४ )

उपनयन-संस्कारके वर्णनमें 'व्यासस्मृति'में कालका वर्णन प्राप्त होता है—

विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्रमेकादशे तथा ।
द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयनक्रिया ॥

( १ । १९ )

अर्थात् 'ब्राह्मणका उपनयन-संस्कार आठवें वर्षमें और क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें तथा वैश्यका बारहवें वर्षमें होना चाहिये ।'

## ज्योतिषमें कालचर्चा—

ज्योतिष-शास्त्रका तो नाम ही 'काल-विधान'-शास्त्र है । उसकी विस्तृत गवेषणा यहाँ सम्भव ही नहीं है; क्योंकि उसके तीनों ही स्कन्ध कालचर्चा एवं काल-गणनासे ही भरे हैं । इसमें कालरूप परमात्माका ही प्रतिपद प्रतिपादन हुआ है । इसके अनुसार दशान्तर्दशा, गोचरादिका अनुसरण करने, शुभ समयोंमें ही विवाह, यज्ञ, यात्रादि आरम्भ करने एवं अनिष्ट योगोंमें मणि, मन्त्रादिद्वारा उनकी शान्ति करनेसे प्राणीका कल्याण होता है ।

## दर्शनोंमें कालका उल्लेख—

षड्दर्शनोंमें भी कालका उल्लेख किया गया है, जिसका वर्णन निम्न प्रकारसे है—न्यायदर्शनके 'तर्क-भाषा' ग्रन्थमें कालको एक और विभु माना है ।

कालोऽपि दिग्विपरीतपरत्वापरत्वानुमेयः । स संख्या-परिमाणपृथक्त्वात्, संयोगविभागवान्, एको नित्यो विभुश्च ।······स चैकोऽपि वर्तमानातीतभविष्यत्क्रियोपाधि-वशाद् वर्तमानादिव्यपदेशं लभते । पुरुष इव पच्यादि-क्रियोपाधिवशात् पाचक-पाठकादिव्यपदेशम् ।

( प्रमेय-निरूपणम्, कालद्रव्यम् पृ० १८९ )

वैशेषिक-दर्शनमें भी कालके लिङ्गोंके परिज्ञानसे ही कालको ज्ञात किया जाता है ।

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥

( वैशेषिकसूत्रम् २ । २ । ६ )

अर्थात् अपरमें एक साथ, देर और जल्दी, ये कालके लिङ्ग अर्थात् लक्षण हैं । सोलह वर्षकी आयुकी अपेक्षा दस वर्षका छोटा होनेसे अपर है । वही दस वर्षका बालक पाँच वर्षके बालकसे बड़ा होनेके कारण 'पर' है । 'यह कार्य एक साथ हुआ' ऐसा व्यवहार युगपत्‌के रूपमें कालका लक्षण है । जहाँ देर लगे वहाँ चिर और जहाँ जल्दी हो वहाँ क्षिप्र । जल्दी और देरका कार्य कालपर आधारित है, अतः यही कालका लक्षण है ।

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥

( २ । २ । ७ )

अर्थात् काल द्रव्यका नित्य होना वायुके व्याख्यानद्वारा ही व्याख्यात समझना चाहिये । क्योंकि गुणोंका अधिकरण होनेसे वायु द्रव्य है । उसीके समान गुणोंका अधिकरण होनेसे काल द्रव्य है । कालद्रव्यका अन्य कोई समवायिकारण न होनेसे वह नित्य है ।

तत्त्वम्भावेन ( २ । २ । ८ )

अर्थात् एक होना कालकी सत्ताद्वारा व्याख्यात है । भूत, भविष्यत् आदि भेद वस्तुओंकी क्रमिक स्थिति एवं क्रिया-कलापोंके आधारपर प्रतीत होता है । इससे कालकी स्थितिपर कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ।

( वही २ । २ । ९ )

अर्थात् नित्य पदार्थोंमें न होनेसे, अनित्य पदार्थोंमें होनेसे और सबका कारण होनेसे वह काल नामसे विख्यात है । नित्य आकाश आदि पदार्थोंमें यह जल्दी हुआ, इत्यादि व्यवहार नहीं होता, परंतु अनित्य घट-पट आदि पदार्थोंमें ऐसा व्यवहार होता है ।

सांख्य और योगदर्शनमें यद्यपि कालका प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, परंतु कई प्रसिद्ध आचार्योंने कालको सांख्यके

तत्त्वमें सम्मिलित कर लिया है। इसमें उन्होंने श्वेताश्वतर-उपनिषद्को प्रमाण माना है, क्योंकि कालको इसी उपनिषद्ने सांख्यके तत्त्वोंमें विशेष आदरसे सम्मिलित किया है। वहाँ इस तत्त्वको माननेवालोंपर आक्षेप करते हुए कहा गया है कि कई लोग प्रकृतिको कालके नामसे पुकारते हैं—'कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा' तथा 'कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः'। जब एक लीक चल पड़ती है तो उसका कोई-न-कोई समर्थक मिलता ही रहता है। इसी काल शब्दद्वारा परवर्ती आचार्य पुरुषको पुकारने लगे। अतः भिन्न-भिन्न आचार्य पुरुषको और कहीं प्रकृतिको कालके नामसे अभिहित करने लगे।

कर्मकाण्ड प्रधान होनेसे पूर्वमीमांसामें कर्मोंके विधानके प्रसङ्गमें कालका वर्णन किया गया है—

**उदगयनपूर्वपक्षाहः पुण्याहेषु दैवानि स्मृतिरूपान्यार्थदर्शनात्। अहनि च कर्म साकल्यम्॥**

( पूर्वमीमांसा ६ । ८ । २३-२४ )

अर्थात् चूडाकरण आदि कर्म पवित्र दिनोंमें करनेका आदेश है। इस कर्मको दिनके समय ही करना चाहिये।

**दीक्षाकालस्य शिष्टत्वादतिक्रमे नियतानामनुत्कर्षः प्राप्तकालत्वात्।** ( पूर्वमीमां० ६ । ५ । ११ । ३८ )

अर्थात् दीक्षा एक मुख्य कार्यके लिये ग्रहण की जाती है, जो कि उत्कृष्ट माना गया है। इसीलिये उस कालमें नियत कर्मोंको करनेकी आवश्यकता नहीं।

वेदान्तके आचार्योंमें कालका सबसे अधिक वर्णन वल्लभाचार्यने किया है। यह काल सत्-चित्-आनन्द इन तीन भावोंसे युक्त है। परंतु ये तीनों धर्म कालमें अप्रकटरूपसे रहते हैं। प्रकटरूपमें केवल सत्त्वांश ही रहता है। वह नित्य होता हुआ भी सबका आश्रय है, सबको उत्पन्न करनेवाला है। वह काल स्वयं विशेषताशून्य है, अप्रतिष्ठित है और कहीं भी उसका अन्त नहीं है। काल अमूर्त है। अतः उसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। वह केवल कार्यवश अनुमेय है। प्रकृतिके गुणों ( सत्त्व-रज-तम )को, जो सृष्टिसे पूर्व साम्यावस्थामें रहते थे, कालको क्षुब्ध कर भिन्न-भिन्न कर देता है।

## महाभारतमें—

महाभारतके शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षधर्मपर्वके शुकदेव-प्रश्नाध्यायमें सृष्टिकी उत्पत्ति बताते हुए बहुत ही व्यवस्थित-रूपसे कालकी चर्चा की गयी है। महाराज ब्रह्मदत्तने प्रतिपादन किया है कि कालके प्रभावसे ही विभिन्न क्रियाएँ होती हैं। कोई बड़ा भारी विद्वान् हो या अल्पविद्यासे युक्त, काल सबको अपने तेजसे अभिभूत कर लेता है। कालका अन्त नहीं है। समुद्रके समान कालमें कोई विशाल द्वीप नहीं है। फिर उसका पार कहाँ प्राप्त हो सकता है? वह कालरूप परब्रह्म परमात्मा स्वयं निराकार होते हुए समस्त प्राणियोंके भीतर जीवरूपमें प्रविष्ट रहता है। वह एक होकर भी अनेक प्रकारका बताया गया है—

**प्रयत्नेनाप्यतिक्रान्तो दृष्टपूर्वो न केनचित्।**
**पुराणः शाश्वतो धर्मः सर्वप्राणभृतां समः॥**

( शान्तिपर्व २२७ । ९६ )

इसी पर्वके अध्याय २२४में आता है कि जब देवासुर-संग्राममें दैत्य और दानवोंका भयंकर संहार हो चुका था और वामन-रूपधारी भगवान् विष्णुने अपने पैरोंसे तीनों लोकोंको नापकर अधिकारमें कर लिया था, सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले इन्द्र देवताओंके राजा हो चुके थे, देवताओंकी खूब पूजा हो रही थी और सबको सुखी देख ब्रह्माजी भी प्रसन्न थे। उसी समय एक दिन इन्द्र अपने ऐरावत नामक हाथीपर बैठकर तीनों लोकोंमें भ्रमण करनेके लिये निकले। उनके साथ रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार, ऋषिगण, गन्धर्व, नाग, सिद्ध तथा विद्याधर आदि भी थे। घूमते-घूमते वे किसी समुद्रतटपर जा पहुँचे। वहाँ एक पर्वतकी गुफामें विरोचन-कुमार बलि भी विराजमान थे। उनपर दृष्टि पड़ते ही इन्द्र हाथमें वज्र लिये हुए उनके पास पहुँच गये।

देवराज इन्द्रको देवताओंके बीचमें ऐरावतकी पीठपर बैठे हुए देखकर भी दैत्योंके स्वामी बलिके मनमें तनिक भी शोक या व्यथा न हुई। वे निर्भय और निर्विकार होकर खड़े रहे। तब इन्द्रने कहा—"विरोचनकुमार! अपने शत्रुकी समृद्धि देखकर भी तुम्हें व्यथा नहीं होती, इसका क्या कारण है? पराक्रम, वृद्ध पुरुषोंकी सेवा अथवा तपसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेके कारण तो तुम्हें शोक नहीं होता? दूसरोंके लिये तो ऐसा आचरण सर्वथा कठिन है। पर तुम शत्रुओंके वशमें पड़े और उत्तम स्थान ( स्वर्गके राज्य ) से भ्रष्ट हुए—इस प्रकार शोचनीय दशामें पड़कर भी तुम्हें शोक क्यों नहीं होता? पहले बाप-दादोंके राज्यपर बैठकर सबके महाराज बने हुए थे, अब उस राज्यको शत्रुओंने छीन

लिया—यह देखकर भी तुम शोक क्यों नहीं करते ? भला, तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है, जो त्रिभुवनका राज्य नष्ट हो जानेपर भी जीवित रहनेमें उत्साह रख सके ?'

फिर कुछ कठोर बातें कहकर इन्द्रने उनका तिरस्कार भी किया। बलिने भी बड़े आनन्दसे वे सारी बातें सुनीं और फिर निर्भय होकर कहने लगे—'इन्द्र ! जब मैं अच्छी तरह कालकी कैदमें आ गया हूँ, तो अब मेरे सामने इस प्रकार डींग हाँकनेसे तुम्हें क्या लाभ है ? देखता हूँ, आज तुम वज्र उठाये मेरे सामने खड़े हो। पहले तुममें इतनी ताकत न थी, अब किसी तरह शक्ति आ गयी है तो इतनी शेखी बघारते हो। जो समर्थ होकर भी अपने हाथमें पड़े हुए वीर शत्रुपर दया करता है, वही महापुरुष माना जाता है। जब दो व्यक्तियोंमें युद्ध होता है तो एककी जीत और दूसरेकी हार निश्चित होती है। इसलिये तुम ऐसा न समझ लो कि 'मैंने अपने बल और पराक्रमसे ही विजय पायी है'। आज जो तुम्हारी दशा अच्छी और मेरी इसके विपरीत है—यह तुम्हारे या मेरे प्रयत्नका फल नहीं, यह तो केवल कालका प्रभाव है। अतः तुम मेरा अपमान न करो। समय-समयपर जीवको कभी सुख और कभी दुःख मिलता ही रहता है। जैसे कालने इस समय तुम्हें राजाके पदपर पहुँचाया है, इसी तरह कभी वह मुझे भी पहुँचायेगा। जब खराब समय आता है तो कालसे पीड़ित मनुष्यको विद्या, तप, दान, मित्र और बन्धु, बान्धव भी नहीं बचा पाते। सैकड़ों आघात करके भी कोई आनेवाले अनर्थको नहीं रोक सकता। इन्द्र ! तुम जो अपनेको इस परिस्थितिका कर्ता मानते हो—यह ही अभिमान तुम्हारे दुःखका कारण होगा। यदि पुरुष स्वयं ही कर्ता होता तो उसको दूसरा कोई उत्पन्न करनेवाला न होता, किंतु वह तो दूसरेके द्वारा उत्पन्न होता है, इसलिये ईश्वरके सिवा और कोई कर्ता नहीं है।

केवल तुमने ही सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया हो, ऐसी भी बात नहीं है। उन सभी राजाओंने सौ यज्ञ किये थे, सभी धर्मात्मा थे और सब-के-सब निरन्तर यज्ञमें संलग्न रहनेवाले थे। तुम्हारी ही तरह वह भी आकाशमें विचरते थे, सैकड़ों मायाएँ जानते थे और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। उनके भी तेज और प्रताप बढ़े हुए थे, किंतु कालने उन सबका संहार कर ही डाला। जिस दिन तुम्हें इस पृथ्वी एवं स्वर्गको उपभोगके बाद त्यागना पड़ेगा, उस दिन तुम अपने प्रबल शोकको न दबा सकोगे। इसलिये विषय-भोगकी इच्छा छोड़ दो, राज्य-लक्ष्मीके घमंडको त्याग दो। ऐसा करनेसे तुम अपने राज्यके नष्ट हो जानेपर भी उसके शोकको धैर्यपूर्वक सह सकोगे। शोकके समय शोक न करो और हर्षका अवसर आनेपर हर्षसे फूल न उठो। इन्द्र ! इस कटु-सत्यके लिये क्षमा करना, अब देर नहीं है, तुमपर भी कालका आक्रमण होने ही वाला है, तुम्हें भी उससे भय प्राप्त होगा। इस समय तुम अपने तीखे वचनोंसे मुझे छेदे डालते हो। मैं शान्त होकर बैठा हूँ, इसलिये तुम अपनेको बहुत बड़ा मान रहे हो। किंतु याद रक्खो, जिस कालने मुझपर धावा किया, वह तुमपर भी चढ़ाई करेगा। देवताओंके एक हजार वर्ष पूर्ण होनेतक ही तुम्हें इन्द्र होकर रहना है।

देवेन्द्र ! तुम मुझे जानते हो और मैं तुमको जानता हूँ। जब मैं राजा था, उस समय जो पुरुषार्थ दिखा चुका हूँ, उससे तुम अपरिचित नहीं हो। एक ही दृष्टान्त देना काफी होगा। पहले जब देवासुर-संग्राम हुआ था, उस समयकी बात तुम्हें भूली न होगी। मैंने अकेले ही समस्त आदित्यों, रुद्रों, साध्यों, वसुओं तथा मरुद्गणोंको परास्त किया था। मेरे वेगसे देवताओंमें भगदड़ पड़ गयी थी। तुम्हारे सिरपर भी पर्वतोंके मैंने कितने शिखर फोड़ डाले थे। किंतु इस समय मैं क्या कर सकता हूँ, कालका उल्लङ्घन करना कठिन है। जैसे मनुष्य रस्सीसे किसी पशुको बाँध लेता है, उसी प्रकार भयंकर काल मुझे अपने पाशमें बाँधे खड़ा है। पुरुषको लाभ-हानि, सुख-दुःख, काम-क्रोध, जन्म-मरण और बन्धन-मोक्ष—ये सब कालसे ही प्राप्त होते हैं।

बलिके इस कथनको सुनकर इन्द्रका क्रोध उतर गया। वे शान्त होकर बोले—'दैत्यराज ! मेरे हाथको वज्रसहित ऊपर उठे देखकर मारनेकी इच्छासे आयी हुई मृत्युका भी दिल दहल जाता है, फिर दूसरा कौन है जो व्यथित न हो ? किंतु तुम्हारी बुद्धि तत्त्वको जाननेवाली और स्थिर है, इसलिये तनिक भी विचलित नहीं होती। इसमें संदेह नहीं कि धैर्यके ही कारण तुम्हें घबराहट नहीं होती। वास्तवमें कालका कोई परिहार नहीं है, उसके उल्लङ्घनका कोई उपाय नहीं है। काल सब प्राणियोंके साथ एक-सा बर्ताव करता है। वह दिन, रात, मास,

क्षण, काष्ठा, लव और कलातकका हिसाब करके प्राणीको पीड़ा पहुँचाता रहता है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि तुमने अपनी बुद्धिसे सम्पूर्ण लोकोंका तत्त्व जान लिया है। तुम सर्वत्र विचरने हुए भी सबसे मुक्त हो, कहीं भी तुम्हारी आसक्ति नहीं है। ऐसा कहकर गजराजपर बैठे हुए देवराज इन्द्र वहाँसे चले गये।

इसी शान्तिपर्वमें ही एक स्थानपर कालकी आलोचना भी है। कालका प्रतिवाद करती हुई एक जातिस्मरा खगी कहती है—'हे राजन्! यदि आप सब क्रियाओंका कारण कालको मानते हैं, तब तो किसीका किसीके साथ वैर नहीं होना चाहिये। अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेपर सगे-सम्बन्धी उसका बदला क्यों लेते हैं? वैद्य लोग रोगियोंकी चिकित्सा करनेकी क्यों अभिलाषा करते हैं? यदि काल ही सबको नष्ट कर रहा है, तो ओषधियोंका क्या प्रयोजन? शोकसे पीड़ित हुए प्राणी क्यों प्रलाप करते हैं? मेरी सम्मतिमें काल, दैव, स्वभाव आदिका आश्रय छोड़कर भगवान्का आश्रय लेकर पराक्रम ही करना चाहिये।'

## पुराणोंमें—

कूर्मपुराणका वचन है—

सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः।
ब्रह्माणो बहवो रुद्रा अन्ये नारायणादयः॥
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः।
परं ब्रह्म च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः॥
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः।
तस्मात् कालात्मके विश्वे स एव परमेश्वरः॥

अर्थात् काल ही सबकी रचना करता है। पुनः वह काल ही सबको ग्रस लेता है। यह समस्त विश्व कालके अधीन है और वह ही परमेश्वर है।

श्रीमद्भागवतपुराणमें कालकी उत्पत्तिका वर्णन इस प्रकार है—

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम्।
अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः॥
प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि।
चेष्टा यतः स भगवान् काल इत्युपलक्षितः॥
(३।२६।१६-१७)

अर्थात् कोई पुरुषके प्रभावको काल कहते हैं, जिससे मायाके कार्यरूप देहमें आत्मतत्त्वका अभिमान करके अहंकारसे मोहित हुए अपनेको कर्ता माननेवाले जीवको निरन्तर भय लगा रहता है। इस कालके गुणोंकी साम्यावस्थावाली निर्विशेष प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है।*

इसमें तथा मत्स्यपुराणमें सूक्ष्मातिसूक्ष्मसे लेकर विशालसे-विशाल कालतकको परिगणन-प्रक्रिया प्राप्त होती है। यहाँ परमाणुसे वेध एवं त्रुटितकके सूक्ष्म कालका विवेचन कर फिर आगे ३ लवोंका निमेष, ३ निमेषोंका क्षण, ५ क्षणोंकी काष्ठा, १५ काष्ठाओंकी लघु, १५ लघुओंकी नाड़ी और २ नाड़ियोंका एक मुहूर्त बतलाया गया है। फिर ६ मुहूर्तोंका पहर, ८ पहरका रात-दिन, १५ अहोरात्रोंका पक्ष, दो पक्षोंका मास, ६ मासोंका अयन, २ अयनोंका वर्ष, ४ लाख ३२ हजार वर्षोंका चतुर्युग और ७१ चतुर्युगोंका एक मन्वन्तर और १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है (श्रीमद्भा० २।१०।४–३०, मत्स्य पु० १४१)।

शिवपुराणमें कालकी महत्ता बताते हुए कहा गया है कि कालसे ही समस्त वस्तुओंकी उत्पत्ति और उनके पालन एवं लय हुआ करते हैं। यह काल स्वतन्त्र और भयंकर रूपमें वर्तमान है।

कालादुत्पद्यते सर्वं कालादेव विपद्यते।
न कालनिरपेक्षं हि क्वचित्किञ्चिद्धि विद्यते॥
भूतभव्यभविष्याद्यैर्विभज्य जरयन् प्रजाः।
अतिप्रभुरिति स्वैरं वर्ततेऽतिभयंकरः॥
(शिवपु०, वायुसं० ४।१।४)

अर्थात् काल (या महाकाल शिव) से ही सब उत्पन्न एवं संहृत होते हैं। अत्यन्त बुद्धिमानी करके भी कोई कालको अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं है। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसकी सत्ता काल-निरपेक्ष हो।

## निर्णयात्मक निबन्धोंमें—

'कालमाधव'में कालका वर्णन इस प्रकार है—

* श्रीमद्भागवतमें भगवान् कृष्णको एवं परमात्माको भी बार-बार कालरूपमें प्रकटित कहा गया है—
सोऽयमद्य महाराज भगवान् भूतभावनः। कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम्॥ (१।१३।४८)
आदि—
तथा पुनः द्रष्टव्य भागवत ३।२९।३७—४० तक एवं ४।१२।३ इत्यादि।

व्यवहारहेतूनां भूतादिकालविशेषणामाधारः स्वयं व्यवहारतो नित्यो निरवयवो मुख्यः कालो यः स परमात्मैव।

नित्यो जन्यश्च कालो द्वौ तयोराद्यः परेश्वरः।
सो वाङ्मनसगम्योऽपि देही भक्तानुकम्पया॥

## कालके विषयमें पाश्चात्य विद्वानोंका मत—

'डिक्शनरी ऑफ फिलासफी एण्ड साइकॉलाजी'में 'टाईम' (समय) शब्दके अन्तर्गत उसका अर्थ बताते हुए विभिन्न विद्वानोंके काल-विषयक मतको प्रस्तुत किया गया है। घटनाओंका क्रम कुछ समयपर्यन्त चलता है। उन घटनाओं और समयके सम्बन्धको जाननेके लिये कालकी आवश्यकता होती है। यह काल न तो किसी व्यक्तिमात्रकी धारणा है और न मस्तिष्कद्वारा सोचनेपर सत्य प्रतीत होती है।

अरस्तूने कहा है कि कालको यद्यपि घटनाओंके क्रमद्वारा गिना जा सकता है तथापि उसको मापनेके लिये आत्माका होना अत्यावश्यक है, यदि आत्माके विना क्रिया सम्भव है, तो कालका मापना भी सम्भव है, अन्यथा नहीं।

प्लेटोका, अरस्तूसे भी एक कदम आगे बढ़कर कहना है कि काल आत्माका जीवन है। परमात्माने जगत्के साथ ही काल-द्रव्यको उत्पन्न किया था। कालके किसी भी अंशको हम नाप नहीं सकते। काल केवल वर्तमानमें है और आत्माद्वारा अनुभूत है। तीन काल नहीं हैं, भूत और भविष्य दोनों अब नहीं हैं, वर्तमान इन कड़ियोंके बीच छोटा-सा समय है, जिससे भूत और भविष्य जुड़ा है। भूत केवल स्मृतिमात्र है, भविष्य आशामात्र है, वर्तमानकी तुलनामें ही दोनोंका ज्ञान होता है। इससे भिन्न अन्य विद्वान् कालके लिये आत्माका होना आवश्यक नहीं बताते। 'अपितु हम स्वयंके अनुभवद्वारा ही कालका अनुमान कर लिया करते हैं।'

अन्य जर्मन विद्वान् लीवनींटस्सने भिन्न विचारोंको व्यक्त किया है कि 'समयकी लंबाई और कालके मध्य भिन्नता पायी जाती है। प्रत्येक वस्तुकी अपनी समयकी लंबाई है; अर्थात् जितने समयतक वस्तु-स्थिति रहेगी, वह प्रत्येक वस्तुका समय है; परंतु (स्वयंका) काल नहीं है। वे मानते हैं कि अपरिवर्तित वस्तुओंका स्वभाव ही काल है, वह सत्य या वास्तविक है। अतः केवल अनुभूतिमात्र नहीं है। काल केवल दैविक विचारोंके रूपमें प्रकट होता है।'

कालकी स्वतन्त्र सत्ताके विषयमें न्यूटनने कहा था—'काल किसी वस्तुसे सम्बन्धित, स्वभावसे ही अपरिवर्तित रूपमें बहता जाता है। एक पूर्णकाल अपने स्वतन्त्र बहावके साथ एक और कालकी आवश्यकता चाहता हुआ दिखायी देता है, जिसमें यह बहता था, जिससे इसके बहावका मूल्य नापा जाता है। क्या यह काल पूर्णरूपसे बहता ही रहता है? रुकता नहीं? यह स्थायी रूपको नहीं ग्रहण कर सकता? कालके अंश एक घटनाके क्रम बताते हैं, तथापि कालके अंश कदापि नहीं मिलते। अतएव यह स्थायी रूपको ग्रहण नहीं कर सकता।'

## इरानियोंका मत—

इरानियोंका काल-विषयक मत जैवेनीजम भारतीय मतके अनुकूल है। पृथ्वी उस बीजसे निकलती है, जिस बीजका कारण स्वयं काल है, जिसमें काल प्रवेश करता है। अतः इस अपूर्ण पृथ्वीकी उस पूर्णसे उत्पत्ति हुई है और अन्तमें उस पूर्णमें लीन हो जाती है और इस अपूर्ण संसारमें काल एक अंशरूपमें स्थित होते हुए भी प्रमुख और मानव-जातिका कारण है, जो स्वयंको प्राकृतिक नियमके रूपमें और प्रारब्धके रूपमें व्यक्त करता है। वह आध्यात्मिक मूल्योंसे असम्बन्धित रहता है। वह केवल प्रकृतिके नियमके रूपमें ही स्थित नहीं रहता, अपितु वह स्वयं प्रकृति भी है। वह समस्त शारीरिक रूपोंका प्रथम कारण है। वह प्रमुख पदार्थोंका जन्मस्थल है। सम्पूर्ण पृथ्वी उस कालसे ही निःसृत हुई है। वह काल आध्यात्मिक मूल्योंसे असम्बन्धित होता हुआ भी उसके केवल शारीरिक ढाँचेको ही अपने अधीन कर सकता है।

अस्तु अन्तमें उस परमात्मरूप कालको नमस्कार करती हुई मैं इस प्रबन्धका उपसंहार करती हूँ।

कलाकाष्ठादिरूपाय परमात्मस्वरूपिणे।
निगमागमगीताय नित्यं कालाय ते नमः॥

# दिव्य पद-रजकणिकाएँ

( लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

प्रभुके वरद चरणकमलकी रजकणिकाएँ अति दिव्य हैं। उनके संस्पर्शमात्रसे ही गौतम-पत्नीका पाषाणदेह दिव्य लोकोत्तर-विग्रहमें परिवर्तित हो गया। वह अपनी पूर्वाकृतिको प्राप्त हो गयीं—

दुःखे सुखे च रज एव बभूव हेतु-
स्तादृग्विधे महति गौतमधर्मपत्न्याः।
यस्माद् गुणेन रजसा विकृतिं गता सा
रामस्य पादरजसा प्रकृतिं प्रपेदे॥
( रामायणचम्पू० बाल० १४९ )

शिला कम्पं धत्ते शिव शिव वियुङ्क्ते कठिनता-
महो नारीच्छायामयति वनितारूपमयते।
वदत्येवं रामे विकसितमुखी वल्कलमुरः-
स्थले धृत्वा बद्ध्वा कचभरमुदस्थादृषिवधूः॥

भगवत्पादाब्जरजसे संस्पृष्ट होते ही शिला काँपने लगी और प्रभु बोल उठे—'शिव, शिव! यह शिला क्यों हिलने लगी और अब तो इसका काठिन्य भी दूर हो गया। अहो! इसमेंसे तो स्त्रीकी छाया-सी दीखने लगी। अरे, अरे! यह तो स्त्री बन ही गयी।' भगवान्‌के यों कहते-न-कहते ही बालों तथा वल्कलोंको सँभालती हुई विकसितमुखी, प्रसन्नानना ऋषिवधू अहल्या उठ खड़ी हुई और फिर चरणरज पानेके लिये उनके चरणोंमें गिर पड़ी—

प्रभु-पद-पदुम-पराग परी।
ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी॥
( गीतावली ५७। १ )

कहते हैं, जब सखियोंने विवाहके अवसरपर सीताजीसे कहा—'सीते! तुम प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करो।' तब इस भयसे कि इनकी दिव्य पादाब्जरजकणिकाओंसे मेरे भालरत्न, चूड़ामणि आदि भी स्त्री हो जायँगे, उन्होंने वैसा न किया—

शिक्षितापि सखिभिर्ननु सीता
रामचन्द्रचरणौ न ननाम।
किं भविष्यति मुनीशवधूवद्
भालरत्नमिह तद्रजसेति॥
तत्पादौ मणिकङ्कणोज्ज्वलकरा नैवं स्पृशत्यद्भुतम्॥
( हनु० ना० १४। ५७ )

सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥
गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥
( मानस० १। २६५ )

इसी प्रकार केवट भी गङ्गापार होनेके समय उनसे कहने लगा—'महाराज! मेरे परिवारवालोंका एकमात्र यह नौका ही जीवनाधार है, पर वह काष्ठकी बनी है और काष्ठ कोई शिलासे अधिक कठोर नहीं होता। आपके दिव्य पदरजसे संस्पृष्ट होकर यह तरणि भी अवश्य ही किसी 'मुनिकी घरनी' बन जायगी और मैं सपरिवार मर जाऊँगा। आपको क्या? आप तो नाव उड़ाकर अपनी राह पकड़ेंगे—

…नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम्।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते
पादयोरिति कथा प्रथीयसी॥
( अध्यात्म० बाल० ६। ३ )

पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा
पश्चात् परं तीरमहं नयामि।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन
स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः॥
( अध्यात्म० बाल० ६। ४ )

उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापा-
दियमपि मुनिपत्नी शापिता कापि वा स्यात्।
चरणनलिनसङ्गानुग्रहं ते भजन्तु
भवतु चिरमियं नः श्रीमती पोतपुत्री॥
( हनु० ३। २०, महा० ३। ४६ )

चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
( मानस २। ९९। २-३ )

'रावरे दोषु न पायनको, पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहनु काठको कोमल है, जलु खाइ रहा है॥'
( कवितावली २। ७ )

चलते-चलते जब प्रभु विन्ध्यारण्यमें पहुँचते हैं, तब बहुत-से उदासी तपस्वी व्रतधारी मुनिजन व्यंग्य करते हुए

प्रभुसे कहते हैं—'महाराज! आपने बड़ी कृपा की। हमलोग गौतम-पत्नीकी कथा सुन चुके हैं। चलिये, अब हमलोगोंका दुःख दूर हुआ। यहाँ जंगलोंमें शिलाओंका कोई अभाव तो है नहीं। बस, आपके सुन्दर पदकमलके संस्पर्शसे अब ये सारी शिलाएँ चन्द्रमुखी ललनाएँ बन जायँगी और एक-एक ऋषिको न जाने कितनी-कितनी स्त्रियाँ मिल जायँगी, कोई गणना है? आखिर ये सब जायँगी भी कहाँ?

पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेहा-
मलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम्।
त्वयि चरति विशीर्णविन्ध्यग्रावाद्रिपादे
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्तः॥

( हनुमन्नाटक ३। १९, प्रसन्नराघवनाटक, महाना० ३। ४४ )

बिंधिके बासी उदासी तपी ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे॥
ह्वै हैं सिला सब चंद्रमुखीं परसें पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू! करुना करि काननको पगु धारे॥

( कविता० अयोध्या० २८ )

चित्रकूटमें कई स्थलोंपर भगवान् राघवेन्द्र तथा पराम्बा जगज्जननी जानकीके पदचिह्न शिलातलोंपर उग आये हैं, जो अद्यावधि ज्यों-के-त्यों हैं। यह उनकी दिव्यताका साक्षात् साक्षी है। भरतमिलाप नामक स्थलपर तो हजारों पदचिह्न प्रकट हो गये हैं। जानकी-कुण्डस्थित भगवती सीताके लाल कमल-जैसे दिव्य पदचिह्नको देखकर हृदय द्रवित हो उठता है और—'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' यह भवभूतिकी उक्ति याद पड़ जाती है। तुलसीदासजीने तो—

'द्रवहिं देखि सुनि कुलिस पखाना।'

परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी॥
जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

( मानस० अयो० का० )

—आदिका कई बार वर्णन किया है। उन्होंने चित्र-कूटके चिह्नोंको लक्ष्यकर अपनी विनयपत्रिकामें स्पष्ट ही लिखा है—

अब चित चेत चित्रकूटहिं चलु।

× × ×

भूमि बिलोकु रामपद अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु।

( विनय० २४। २ )

वे मानसमें भी भरतजीसे कहलाते हैं—

प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ तौ आवौं देखी॥

( २। ३०७। २ )

और तो और, कालिदासने भी मेघदूतमें इन चिह्नोंको सादर स्मरण किया है—

'वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु।'

( पूर्वमेघ० १२ )

भागवतकारने बड़े सरस एवं हृदयग्राही शब्दोंमें प्रभुके आत्मज्योतिमें प्रवेशकी कथाका उल्लेख करते हुए कहा है कि दण्डकवनके कण्टकोंसे विद्ध भगवान् रामके वे पदकमल स्मरण करनेवालोंके हृदयसे कभी न निकलें।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः॥

( ९। ११। १९ )

ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वन्द मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

( मानस० ७। १२। छं० ४ )

जिस सौभाग्यशालीने एक बार भी उनका दर्शन, स्पर्श, अनुगमन या सेवन किया, वह योगियोंके लोकोंको प्राप्त हुआ।

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥

( श्रीमद्भा० ९। ११। २२ )

उनकी नखमणिचन्द्रिका ध्यान करनेवालेके हृदयके महान् अन्धकारका संहार करती है, वह त्रितापोंको भी निरस्त करती है।

'नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे।'

( श्रीमद्भा० ११। २। ५४ )

उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्।

( श्रीमद्भा० ३। २८। २१ )

'नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम्।'

( श्रीमद्भा० ३। ८। २६ )

इन्हीं दिव्य पादरेणुओंसे भगवती भागीरथी, पापतापा-पहारिणी गङ्गा प्रसूत हुईं, जिसे सिरपर धारणकर शंकरजी कल्याणप्रद तथा कृतकृत्य हुए—

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन
तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्।

ध्यातुर्मनःशमलशैलनिसृष्टवज्रं
ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥
( श्रीमद्भा० ३ । २८ । २२ )

'परसि जो पाँय पुनीत सुरसरी सोहै तीनि-गवनी ।
तुलसिदास तेहि चरन-रेनुकी महिमा कहै मति कवनी ॥'
( गीतावली, बाल० ५८ । ३ )

इन चरणोंकी महिमा तथा दिव्यता तो तब देखते बनती थी, जब बलिके यज्ञमें वे क्षणमें ही बढ़ते-बढ़ते भूः, भुवः, स्वरादि लोकोंको लाँघ गये और ब्रह्मलोकमें जानेपर ब्रह्माजीने उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रक्षालन कर अवनेजनजलको अपने कमण्डलुमें रख लिया, जो आकाशमार्गसे गिरकर भगवती गङ्गाके रूपमें तीनों लोकोंको पवित्र करता है—

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य
पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि
लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥
( श्रीमद्भा० ८ । २१ । ४ )

कहाँतक कहा जाय इन दिव्य पादाब्ज-किञ्जल्कोंमें वह जादूभरी सुगन्ध है, जो आत्माराम परम निष्काम ब्रह्मलीन सनकादि मुनियोंके परम शान्त हृदयमें भी विक्षोभ—हलचल पैदा कर देती है ।

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द-
किंजल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां
संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥
( श्रीमद्भा० ३ । १५ । ४३ )

इन दिव्य पदकमलोंकी सेवाकी रुचि भी अशेष जन्मोंके मलोंका क्षय कर डालती है, फिर सेवाकी बात तो निराली है—

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना-
मशेषजन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोति.............

उनका ध्यान करनेवाला पुनः संसृतिमें नहीं पड़ता—

यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनः
न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥
( श्रीमद्भा० ४ । २१ । ३१-३२ )

शुद्धात्मा पुरुष इन चरणोंका परित्याग करनेमें वैसा ही भय खाता है, जैसे क्लेशोंका मारा यात्रासे लौटा व्यक्ति अपने घरको छोड़नेमें—

धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ।
मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥
( श्रीमद्भा० २ । ८ । ६ )

वह ध्याताके सारे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है और सभी वरदानोंका उद्गमस्थान है—

'सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ।'
( श्रीमद्भा० २ । ६ । ६ )

'पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गै-
रभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम् ।'
( श्रीमद्भा० ३ । ८ । २६ )

'अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजम् ।'
( श्रीमद्भा० ४ । २१ । ३३ )

पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजी महाराजने अपनी विनयपत्रिकामें उपर्युक्त सारे तत्त्वोंको किस अनूठे ढंगसे एकत्र संगृहीत कर दिया है, यह देखते ही बनता है—

कबहिं देखाइहौ हरि चरन ।
समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल-करन ॥
सरद-भव सुंदर तरुनतर अरुन-बारिजबरन ।
लच्छि-लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट-बटु बलि-छरन ।
बिप्रतिय नृग बधिकके दुख-दोस दारुन दरन ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृंद-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन-तरन ॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥
( वि० प० २१८ )

हन्त ! जिस प्रकार लौकिक भोग-सामग्रियोंके स्पर्शके लिये यह पामर, अधम, जीव दौड़ता, प्रयत्न करता है, काश ! उसका शतांश भी इन दिव्य चरणरेणुओंके स्पर्शकी इच्छा हुई होती, चेष्टा की होती—

'चंदन-चंदबदनि-भूषन-पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।
त्यों रघुपति-पद-पदुम-परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥'
( वि० प० १७० )

पर ऐसा सौभाग्य कहाँ ? नाथ ! अब तो केवल आपकी कृपामयी मूर्तिका ही एकमात्र अवलम्बन है, सहारा है, प्रतीक्षा है—

'है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ।'

# मूसलका चमत्कार

## [ धर्मात्मा वत्सव्रीका चरित्र ]

बहुत पहले इस पृथ्वीपर विदूरथ नामके एक राजा हो चुके हैं। उनकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई थी। उनके दो पुत्र थे—सुनीति और सुमति। एक दिन राजा विदूरथ शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ उन्हें एक विशाल गड्ढा दिखायी दिया, जो पृथ्वीका मुख-सा प्रतीत होता था। उसे देखकर राजाने सोचा, यह भयंकर गर्त क्या है? मालूम होता है पातालतक जानेवाली गुफा है, पृथ्वीका साधारण गर्त नहीं, देखनेमें भी पुराना नहीं जान पड़ता। उस निर्जन वनमें इस प्रकार सोचते-विचारते हुए राजाने वहाँ सुव्रत नामके एक तपस्वी ब्राह्मणको आते देखा और निकट आनेपर उनसे पूछा—'यह क्या है? यह गर्त बहुत ही गहरा है, इसमें पृथ्वीका भीतरी भाग दिखायी दे रहा है।'

ऋषिने कहा—'राजन्! क्या आप इसे नहीं जानते? इस पृथ्वीपर जो कुछ भी है, वह सब राजाको ज्ञात होना चाहिये। रसातलमें एक महापराक्रमी भयंकर दानव निवास करता है, वह पृथ्वीको जृम्भित (छिद्रयुक्त) कर देता है, इसलिये उसे कुजृम्भ कहते हैं। नरेश्वर! वह पृथ्वीपर अथवा स्वर्गमें जो कुछ करता है, उसकी जानकारी आप क्यों नहीं रखते? पूर्वकालमें दीर्घकाल-तक देवीकी आराधनाकर दैत्योंके संहारके लिये विश्वकर्माने जिसका निर्माण किया था, वह सुनन्द नामका मूसल उस दुष्टात्माने हड़प लिया है। उसीसे युद्धमें वह शत्रुओंका संहार करता है। पातालके अंदर रहकर उस मूसलसे ही वह इस पृथ्वीको विदीर्ण कर देता है और इस प्रकार समस्त असुरोंके आने-जानेके लिये द्वार बना लेता है। जब आप पातालके भीतर रहनेवाले इस शत्रुका नाश करेंगे, तभी वास्तवमें धर्मपूर्वक इस सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी हो सकेंगे। राजन्! उस मूसलके बलाबलके विषयमें विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं कि आदिशक्तिकी प्रतीक-भूता यदि कोई स्त्री उस मूसलको छू दे तो वह उस दिन निर्बल हो जाता है, किंतु दूसरे दिन फिर पूर्ववत् प्रबल हो जाता है। युवतीकी अङ्गुलियोंके स्पर्शसे उसकी शक्तिके नष्ट हो जानेका जो गुण-दोष या प्रभाव है, उसे यह दुराचारी दैत्य नहीं जानता। भूपाल! आपके नगरके समीप ही उसने यह पृथ्वीमें छेद कर दिया है, फिर भी आप निश्चिन्त क्यों हैं?'

इतना कहकर ब्रह्मर्षि सुव्रत चले गये। राजाने भी अपने नगरमें जाकर मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंसे परामर्श किया और कुजृम्भके विषयमें जो कुछ सुना था, वह सब कह सुनाया। उन्होंने मूसलका वह प्रभाव भी—कि स्त्रीके स्पर्शसे उसकी शक्तिका ह्रास हो जाता है—मन्त्रियोंको बताया। जिस समय राजा मन्त्रियोंके साथ परामर्श कर रहे थे, उस समय उनकी कन्या मुदावती भी पास ही बैठी सब कुछ सुन रही थी। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद कुजृम्भने सखियोंसे घिरी हुई उस राजकन्याको उपवनसे हर लिया। यह बात सुनकर राजाके नेत्र क्रोधसे चञ्चल हो उठे और उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंसे, जो वनके मार्ग भलीभाँति जानते थे, कहा—'तुमलोग शीघ्र जाओ। उस दानवने निर्विन्ध्याके* तटपर गड्ढा बना रक्खा है, उसीके मार्गसे रसातलमें जाकर मुदावतीका अपहरण करनेवाले उस दुष्टको मार डालो।'

इसपर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए दोनों राजकुमार उस गर्तके मार्गसे सेनासहित रसातलमें जा पहुँचे और

* यह चम्बलकी सहायक नदी कालीसिन्धु है। (मेघदूत १। ३०-३१), 'नेवज' या 'जामनीरी' (Thornton's Gazeteer, N. L. Dey's—Geographical Dictionary)

कुजृम्भसे युद्ध करने लगे। उनमें परिघ, खड्ग, शक्ति, शूल, फरसे तथा बाणोंकी मारसे निरन्तर अत्यन्त भयानक संग्राम होता रहा। फिर मायाके बली दैत्यने युद्धमें उन दोनों राजकुमारोंको बाँध लिया और उनके समस्त सैनिकोंका संहार कर डाला। यह समाचार पाकर राजाको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपने सभी योद्धाओंसे कहा—'जो इस दैत्यका वध करके मेरे दोनों पुत्रोंको छुड़ा लायेगा, उसको मैं अपनी कन्या ब्याह दूँगा।' भनन्दनके पुत्र वत्सप्रीने भी यह घोषणा सुनी। वह बलवान्, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता तथा शूरवीर था। उसने अपने पिताके प्रिय मित्र राजा विदूरथके पास आकर उन्हें प्रणाम किया और विनीत भावसे कहा—'महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपके ही तेजसे उस दैत्यको मारकर आपके दोनों पुत्रों तथा कन्याको छुड़ा लाऊँगा।' यह सुनकर राजाने अपने प्यारे मित्रके उस पुत्रको प्रसन्नतापूर्वक गलेसे लगा लिया और कहा—'वत्स ! जाओ, तुम्हें अपने कार्यमें सफलता प्राप्त हो।'

तदनन्तर वीर वत्सप्री खड्ग और धनुष ले, अंगुलियोंमें गोधाके चर्मसे बने हुए दस्ताने पहनकर भगवती जगदम्बाका स्मरणकर पूर्वोक्त गड्ढेके मार्गसे तुरंत पातालमें गया। वहाँ उसने अपने धनुषकी भयंकर टंकार सुनायी, जिससे सारा पाताल गूँज उठा। वह टंकार सुनकर दानवराज कुजृम्भ अपनी सेना साथ ले बड़े क्रोधके साथ वहाँ आया और राजकुमारके साथ युद्ध करने लगा। दोनोंके पास अपनी-अपनी सेनाएँ थीं, एक बलवान्का दूसरे बलवान् वीरके साथ युद्ध हो रहा था। लगातार तीन दिनोंतक घमासान युद्ध होता रहा, तब वह दानव अत्यन्त क्रोधमें भरकर मूसल लानेके लिये दौड़ा। प्रजापति विश्वकर्माका बनाया हुआ वह मूसल सदा अन्तःपुरमें रहता था और गन्ध, माला तथा धूप आदिसे प्रतिदिन उसकी पूजा होती थी। राजकुमारी मुदावती उस मूसलके प्रभावको जानती थी। अतः उसने अत्यन्त नम्रतासे मस्तक झुकाकर उस श्रेष्ठ मूसलका स्पर्श किया। वह महान् दैत्य जबतक उस मूसलको हाथमें ले न ले, तबतक उसने नमस्कारके बहाने अनेक बार उसका स्पर्श कर लिया, फिर उस दैत्यराजने युद्धभूमिमें जाकर मूसलसे युद्ध आरम्भ किया; किंतु उसके शत्रुओंपर मूसलके प्रहार व्यर्थ सिद्ध होने लगे। उस दिव्य अस्त्रके निर्बल पड़ जानेपर दैत्यने दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा शत्रुका सामना किया। राजकुमारने उसे रथहीन कर दिया। तब वह ढाल-तलवार लेकर उसकी ओर दौड़ा। उसे क्रोधमें भरकर वेगसे आते देख राजकुमारने कालाग्निके समान प्रज्वलित आग्नेय-अस्त्रसे उसपर प्रहार किया। उससे दैत्यकी छातीमें गहरी चोट पहुँची और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। उसके मारे जानेपर रसातलनिवासी बड़े-बड़े नागोंने महान् उत्सव मनाया। राजकुमारपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्वराज गाने लगे और देवताओंके बाजे बज उठे। राजकुमार वत्सप्रीने उस दैत्यको मारकर राजा विदूरथके दोनों पुत्रों तथा कृशाङ्गी कन्या मुदावतीको भी बन्धनसे मुक्त किया। कुजृम्भके मारे जानेपर नागोंके अधिपति शेषसंज्ञक भगवान् अनन्तने उस दिव्य मूसलको ले लिया। मुदावतीने सुनन्द नामक मूसलके गुणको जानकर उसका बारंबार स्पर्श किया था, इसलिये नागराज अनन्तने उसका नाम भी सुनन्दा ही रख दिया। तत्पश्चात् राजकुमारने भाइयों-सहित उस कन्याको शीघ्र ही पिताके पास पहुँचाया और प्रणाम करके कहा—'तात ! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं आपके दोनों पुत्रों और इस मुदावतीको भी छुड़ा लाया। अब मुझसे और भी जो कार्य लेना हो, उसके लिये आज्ञा कीजिये।'

इसपर महाराज विदूरथके मनमें बड़ी प्रसन्नता

हुई। वे उच्चस्वरसे बोले—'बेटा! बेटा!! तूने बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया। आज देवताओंने तीन कारणोंसे मेरा सम्मान बढ़ाया है—एक तो तुम जामाताके रूपमें मुझे प्राप्त हुए, दूसरे मेरा शत्रु मारा गया तथा तीसरे मेरी संतानें कुशलपूर्वक लौट आयीं; अतः आज शुभ मुहूर्तमें तुम मेरी इस कन्याका पाणिग्रहण करो,'—यों कहकर राजाने उन दोनोंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया। कुछ कालके बाद उसके वृद्ध पिता भनन्दन वनमें चले गये और वत्सप्री राजा हुआ। उसने सदा ही प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करते हुए अनेक यज्ञ किये। वह प्रजाको पुत्रकी भाँति मानकर उसकी रक्षा करता था। उसके राज्यमें वर्णसंकर संतानकी उत्पत्ति नहीं हुई। कभी किसीको लुटेरों, सर्पों तथा दुष्टोंका भय नहीं हुआ। इनके शासनकालमें किसी प्रकारके उत्पातका भी भय नहीं था।

( मार्कण्डेयपुराणसे )

# सर्वमङ्गला भगवती त्रिपुरा

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

( दुर्गासप्तशती ११ । १० )

'त्रिपुरा-रहस्य'के माहात्म्यखण्डमें शक्ति-उपासनाका अत्यन्त परिष्कृत एवं प्राञ्जलरूप प्राप्त होता है। इस ग्रन्थका दूसरा नाम 'हारितायन-संहिता' भी है। परशुरामजीने बड़ी कठिनतासे इस ग्रन्थको महर्षि दत्तात्रेयजीसे प्राप्त किया था।

इसमें भगवती त्रिपुरा या ललिताको करुणाका अवतार बताया गया है। वे जगन्माता होनेके कारण सर्वाधिक कृपापूर्ण हों, इसमें क्या आश्चर्य? 'देवी-माहात्म्य'में भी कहा गया है—

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

( ५ । ६५-६७ )

अतः वे उपासकका द्रुततर कल्याण करें, इसमें क्या संदेह!

त्रिपुराका सर्वमङ्गला नाम 'सप्तशती', 'ललितात्रिशती' तथा 'ललितासहस्रनाम' आदि सभी स्तोत्रोंमें प्राप्त होता है। आचार्य शंकरने 'ललितात्रिशतीके' सर्वमङ्गला शब्दकी व्याख्यामें लिखा है कि वैसे तो प्रायः सभी स्त्रियाँ ही मङ्गलरूपा हैं—

'सर्वेषां प्राणिनां मङ्गलसाधनभूता योषाः।'

फिर महामाया भगवती ललिता या त्रिपुराका तो कहना ही क्या! वे सब प्रकारसे मङ्गलमयी एवं समस्त मङ्गलोंकी खान हैं। वे ध्यान, स्मरण, पूजा, प्रणामादिद्वारा चेतन और जड़ोंको भी मङ्गल एवं कृतार्थता प्रदान करती हैं—

'सर्वैः प्रकारैः ध्यानकीर्तनपूजानमस्कारार्चनभक्तितो जडानामपि मङ्गलं सुखं तनोति इति सर्वमङ्गला'

अथवा 'ब्रह्मरूपा होनेसे वे परममङ्गलरूपा' हैं—

'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति'

( बृहदारण्यकोप० ४ । ३ । ३२ )

इसलिये कहा भी है—

अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात्।
स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तं मङ्गलं विदुः॥

अत्यन्त कल्याण स्वरूप होने, नित्य कल्याणसे संश्लिष्ट या उसका आधार होनेसे तथा स्मरण-भजन करनेवालोंको वर-प्रदान करनेसे या उनकी सभी इच्छाओंको पूर्ण करनेके कारण उन ब्रह्मको मङ्गलरूप कहा गया है।

श्रीभास्करराय भारतीने भी ( भासुरानन्दनाथ, जिनकी छोटी जीवनी कल्याणके इसी अङ्कमें श्रद्धेय श्रीकविराज-

जीके लेखमें प्रकाशित है, ) 'ललिता-सहस्रनाम', श्लोक १०३के—'सर्वशक्तिमयी सर्वमङ्गला सद्गतिप्रदा'—की व्याख्या करते हुए इस शब्दके व्युत्पादक 'देवीपुराण'के दो श्लोकोंको उद्धृत किया है, जो इस प्रकार हैं—

> सर्वाणि हृदयस्थानि मङ्गलानि शुभानि च।
> ईप्सितानि ददातीति तेन सा सर्वमङ्गला॥
> शोभनानि च श्रेष्ठानि या देवी ददते हरे।
> भक्तानामार्तिहरणी तेनेयं सर्वमङ्गला॥

भगवान् शंकर ( विष्णु भगवान्से ) कहते हैं—वे देवी भक्तके हृदयकी सभी मङ्गलमयी कामनाओंको पूर्ण करती हैं, इसलिये 'सर्वमङ्गला' हैं। विष्णो ! वे केवल शोभन, श्रेष्ठ, कल्याणमय पदार्थोंको ही देती हैं तथा भक्तोंके सभी क्लेशोंको दूर करती हैं, अतः वे 'सर्वमङ्गला' कही गयी हैं।

उनकी कृपासे ही मनुष्यकी मोह-निवृत्ति, विद्याकी प्राप्ति एवं परम मङ्गलरूप स्वरूपावस्थिति सम्भव है—

> सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
> सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥
> ( दुर्गासप्तशती १। ५७ )

इसीलिये 'प्रपञ्चसार'-जैसे विस्तृत तन्त्र-ग्रन्थका निर्माण कर आचार्यने त्रिपुराकी आराधनाकी प्रक्रिया प्रदष्ट की है। उनकी प्रसन्नताके बिना ज्ञान या मोहकी निवृत्ति सम्भव नहीं। यही बात सुमेधाने राजा सुरथको 'देवी-माहात्म्य'में विस्तारसे समझायी थी।

ये त्रिपुरा या ललिता ही दुर्गतिनाशिनी श्रीदुर्गा भी हैं। दुर्गतिको विनष्ट करनेके लिये आध्यात्मिक शौर्यकी भी आवश्यकता है। शूर साधक सिंह-समान ( कामादि ) शत्रुओंको भी अपने वशमें रखता है। इसी बातको बतलानेके लिये उन भगवती दुर्गाका वाहन सिंह है।

तन्त्र और पुराणोंमें उनके हाथमें रहनेवाले अस्त्र-शस्त्रोंका भी वर्णन है, जो वास्तवमें आततायियोंको दिये जानेवाले रोग-शोकके द्योतक हैं। उनके हाथका त्रिशूल साधकके आध्यात्मिक-आधिभौतिक तथा आधिदैविक—सभी पीड़ाओंका संहार करता है।

'केनोपनिषद्'में कथा आती है कि एक बार देवताओंको अहंकार हुआ कि वे बड़े शक्तिमान् हैं। जब उनका भ्रम दूर नहीं हो सका, तब पूजनीय परमेश्वर यक्ष-रूपमें उनके मध्यमें चले आये। सबकी शक्ति क्षीण हो गयी, वे उन्हें पहचानतक नहीं सके। उस समय इन्हीं करुणामयी ललिता या उमा-दुर्गाने फिर उनके बीच प्रकटित होकर कहा कि यह यक्ष ब्रह्म ही है।

नवरात्रोंमें उनकी आराधना विशेष रूपसे फलवती होती है। अतः अत्यन्त प्राचीनकालसे सम्पूर्ण भारतवर्षमें इस अवसरपर उनकी प्रायः घर-घरमें आराधना होती आयी है। देवी प्रसन्न होकर अर्थ, धर्म, विजय, यश, सुख, समृद्धि, आरोग्य, धन-धान्यकी वृद्धि करती हैं, साथ ही ये परा एवं अपरा विद्याओंके प्रदानपूर्वक बड़ी सरलता-से प्राणीको मोक्षतक पहुँचा देती हैं। शास्त्रोंमें कहा भी गया है कि जहाँ सुख-भोग है, वहाँ मुक्तिकी सम्भावना नहीं है और जहाँ मोक्षकी रुचि है, वहाँ भोगके लिये स्थान नहीं है। किंतु आद्याशक्ति भगवती दुर्गा, त्रिपुराके उपासकोंके लिये एक हाथमें सुख-शान्ति और योगक्षेम-रूपी शुद्ध भोग भी प्राप्त हैं तथा दूसरे हाथमें विद्योपार्जन-पूर्वक मोक्ष भी सुस्थित है—

> यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः
> यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।
> श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
> भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

—जा० श०

# मध्यकालीन रामकथा-साहित्यका संक्षिप्त दिग्दर्शन

( लेखक—डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी )

मध्यकालीन हिन्दी साहित्यके सर्वेक्षणसे पता चलता है कि यह युग विशेषतया भक्तिका युग रहा। सर्वश्री चैतन्य, रामानुज, रामानन्द, निम्बार्क, वल्लभ आदि आचार्योंका जनतापर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। यद्यपि कुछ कवियोंने अपने आश्रयदाता राजाओंके चरित्र, कुछने 'रसरतन', 'पद्मिनी', 'सत्यवती', 'पद्मावती' आदिके कल्पित चरित्र-काव्य आदि भी लिखे, पर अधिकांश कवियोंने राम-कृष्णके पावन चरित्र-सरोवरमें ही अपनी वाणीका अवगाहन कराया। रामचरित्रोंमें परमश्रद्धेय गोस्वामी तुलसीदासजीका रामकथा-काव्यमालाका सुमेरुभूत 'रामचरितमानस' तो अत्यन्त ही प्रसिद्ध है, अतः यहाँ उसे छोड़कर शेष रामकथा साहित्यका ही दिग्दर्शन कराया जायगा।

श्रीईश्वरदासजी ( १६वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध )ने 'भरतविलास', 'अंगदपैज', और रामजन्म नामक तीन खण्ड-काव्योंको अवधीमें दोहे-चौपाई छन्दोंमें बनाया, जिनमें दास्य-भक्ति दिखायी देती है। माधवदास जगन्नाथने 'नारायणलीला' नामक ग्रन्थमें चौबीस अवतारोंका वर्णन करते हुए रामावतारकी कथा कही है। इनकी एक दूसरी काव्यपुस्तक 'रघुनाथ-लीला' ( रचना-काल १५८० वि० ) भी है, जिसमें रामकथा कही गयी है।

इधर राम-काव्यका माधुर्य भावनापरक रसिकसम्प्रदायका भी बड़ी तेजीसे विकास हुआ। इस रसिकसम्प्रदायमें कृष्णदास पयहारीने व्रजभाषामें 'अष्टयाम' और 'जुगलचरित्र' की रचना की। स्वामी अग्रदासने व्रजभाषामें 'कुंडलिया', 'रामायण', 'अष्टयाम', 'रामध्यान-मञ्जरी' और 'रामज्योनार' ग्रन्थ लिखे। विष्णुदास या विष्णुस्वामीने व्रजभाषामें 'रामचन्द्र-चरित्र' एवं 'रामविहार' ग्रन्थ लिखे। रीवांनिवासी मधुर अली ( समय १६१५ वि० )ने 'युगल-विनोद', 'युगल-वसन्त', 'विहार-लीला', 'युगल हिंडोला', 'युग-विनोद' और 'कवितावली' प्रणीत किये।

## समकालीन रामकाव्य—

तुलसीके समकालीन सूर यद्यपि रसिक कृष्णके उपासक थे, किंतु उन्होंने 'सूरसागर'में जो रामकथा दी है, उसे इस रससे बचाकर रखा है और रामके मर्यादावादीरूपकी पूर्ण रक्षा की है। वस्तुतः इसका मूल श्रेय भागवतको ही है, जिसने रामको कृष्णके समान शृङ्गारिकरूपमें नहीं रखा। 'सूरसागर'के नवम स्कन्धके १५८ पदोंमें रामचरित वर्णित है। इसके अतिरिक्त सूरसागरमें ९८ पद और हैं, जहाँ रामकी चर्चा है। दशम स्कन्धके दो पदों ( ८१६ एवं ८१७ )में भी अभेदोपासनाका चित्रण है। पद ३७९में भी रामावतारका उल्लेख है। सूरसागरके इन पदोंमें रामजन्मसे लेकर राम-राज्याभिषेकतकका चरित वर्णित है। रामजन्मसे पूर्व जय-विजयका रावण-कुम्भकर्णके रूपमें जन्म लेनेका भी प्रसङ्ग अङ्कित है। परशुराम, वाल्मीकि-कथाके अनुगमनपर विवाहके पश्चात् मार्गमें मिलते हैं। सीताकी अग्निपरीक्षाका भी सुन्दर वर्णन है। इन पदोंको देखनेसे पता चलता है कि उनमें एक-से-एक मनोरम और मार्मिक चित्र हैं।

## सेनापति—

गोस्वामी तुलसीदासजीके समकालीन सेनापति, केशवदास और हृदयरामने भी रामकथाको काव्यात्मकरूप प्रदान किया। सेनापतिद्वारा ( १६४६ वि० ) कथित रामकथा 'कवित्त-रत्नाकर'की चौथी तरंगमें वर्णित है। इसमें शृङ्खलाबद्ध रामकथा न होकर केवल ७६ कवित्तोंमें रामकथाका यत्र-तत्र चरित्र-चित्रण मिलता है। 'सेनापति' स्वयं इस विषयमें कहते हैं—

'सेनापति' यातैं कथा क्रम करें प्रनाम करि,<br>
काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं।

सेनापतिने जनक-सभामें रामद्वारा शिवधनुष-भङ्ग तथा राम-सीताका संक्षिप्त विवाह वर्णित कर सीतारूपके वर्णनमें अधिक रुचि दिखायी है और कहा है कि राम एकपत्नी व्रतधारी इसलिये हो सके; क्योंकि सीता-सी सुन्दर स्त्री दूसरी विश्वमें थी ही नहीं।

'सेनापति' राम एक नारी व्रतधारी भयौ<br>
सो तो न बड़ाई रघुवीर धीरताई की।<br>
जापर गँवारि देवनारि वारि वारी सो तो,<br>
महिमा अपार सियरानी की निकाई की॥

राम-सीता-विवाहके पश्चात् परशुराम और रामका विवाद तीन कवित्तोंमें वर्णित है। सेनापतिने रामको पूर्णावतार माना है और मान्यता प्रकट की है कि राम वनमें देव-दुःखदलन हेतु गये थे। 'सेनापति'ने भी रावणद्वारा छाया-सीताका ही हरण

दिखलाया है। हनुमान्‌द्वारा सीता-खोजको उन्होंने थोड़ा विस्तार दिया है। इनका कथन है कि हनुमान्‌जीको इस पारसे समुद्रके उस पार जानेमें कुछ भी समय न लगा। एक पलक मारते ही वे पार जा पहुँचे। इस प्रसङ्गके अन्तर्गत लंकादहन-वर्णनमें सेनापतिने एक सुन्दर कल्पना की है। उनका प्रश्न है कि शीतकालमें सूर्य भागकर दक्षिणमें क्यों जाता है? तो लंका-दहनकी आग आज भी लंकामें व्याप्त है, बस, उसीकी गर्मी पानेके लिये—

> सीत माँझ उत्तर तैं, भानु भाजि दच्छिन मैं
> अजौं ताही आँच ही के आसरे रहत है।

रामने क्रोधकर समुद्रको दण्डित करनेके लिये अग्निवाण खींचा, जिसकी भीषण आगका वर्णन सेनापतिने बड़ी रुचिसे किया है। सेतुबन्ध-वर्णन भी सेनापतिने कुछ विस्तारसे किया है, फिर अंगदका दूतत्व वर्णित कर राम-रावण-युद्धका वर्णन किया है। सीताका अग्निप्रवेश अङ्कित करनेके पश्चात् इन्होंने राम-सीता-लक्ष्मणको 'फूल-बिमान'से अयोध्या पहुँचाया है और रामको राजा बनाकर रामराज्यकी प्रशंसा की है। राम, रामनाम तथा रामकथाकी महत्ता घोषित कर रामकथाको समाप्त करते हुए इन्होंने कहा—

> तीरथ सरब सिरोमनि 'सेनापति' जानी,
> राम की कहानी गंगाधार सो बखानी है॥

## महाकवि केशवदास—

इनकी यशोभित्तिकी सर्वोच्च अट्टालिका है—'रामचन्द्रिका'। इसका रचनाकाल १६५८ वि० है। ये आरम्भमें रामकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

> पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परि-
> पूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
> दरसन देत जिन्हैं दरसन समुझैं न,
> नेति नेति कहैं बेद छाँड़ि भेदयुक्ति को॥
> जानि यह 'केसोदास' अनुदिन राम-राम
> रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
> रूप देहि अनिमाहि, गुन देहि गरिमाहि,
> भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को॥

केशवदासने रामजन्मसे लेकर सीता-त्यागकी सम्पूर्ण कथा कही है, जिसमें वाल्मीकीय रामायणका अनुगमन किया गया है। इनके रामचरितपर 'हनुमन्नाटक' और 'प्रसन्नराघव'की स्पष्ट छाप भी प्राप्त होती है। इनकी 'रामचन्द्रिका'की विशेषताएँ हैं—

(१) छन्दोंकी विविधता, (२) अलंकार-प्रयोग, (३) वर्णनवैविध्य और (४) संवाद-सौन्दर्य।

इन्हीं विशेषताओंके कारण 'रामचन्द्रिका' अनेक प्रहारोंके बावजूद भी हिन्दी-जगत्‌में अपने महत्त्वपूर्ण आसनपर जमी है। हिन्दीके किसी भी कथा-काव्यमें छन्दोंकी यह विविधता प्राप्त नहीं होती है। यद्यपि इससे कथा-प्रवाहमें कहीं-कहीं कुछ बाधा भी आ खड़ी होती है। एक शब्दके छोटेसे—श्री छन्द=सिद्धी। रिद्धी (रा० च० बा० कां० १-४) से लेकर बड़े-से-बड़े छन्दके इसमें दर्शन होते हैं। यद्यपि केशवदासने इसमें प्रायः सभी अलंकारोंके ही प्रयोग किये हैं; किंतु उनके विशिष्ट अलंकार हैं—'परिसंख्या', 'विरोधाभास' और 'श्लेष', जिनपर उनका असाधारण अधिकार दिखलायी पड़ता है। रामचन्द्रिका, सुन्दर चमत्कारिक विस्तृत वर्णनोंसे सम्पन्न प्रबन्धकाव्य है। वास्तवमें इसे 'वर्णनात्मक प्रबन्धकाव्य' कहा जा सकता है।

## हृदयराम भल्ला—

इनकी प्रसिद्ध रचना हिन्दी हनुमन्नाटक (रचनाकाल १६८० वि०) है। ये पंजाब-निवासी होनेके कारण हृदयराम पंजाबी नामसे भी ख्यात हैं। इनका 'हनुमन्नाटक' संस्कृत 'हनुमन्नाटक'-के आधारपर लिखा गया है। नेवाजने जैसे संस्कृतके ख्यात नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का काव्यबद्ध अनुवाद 'शकुन्तला-उपाख्यान' नामसे किया, जिसमें 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'की नाटकीय शैली परिवर्तित होकर वर्णनात्मक काव्यशैली बन गयी। उसी प्रकार हृदयराम पंजाबीकी शैली वर्णनात्मक जननाट्य शैली हो गयी है, जिसमें स्वयं कवि नया वर्णन करता हुआ कथाको आगे बढ़ाता चलता है। इसमें नट-नटीकी प्रस्तावना भी नहीं है। कविका उद्देश्य रामका चरित्र वर्णन करना है। नाटकके अन्तमें वह कहता है—

> रामचन्द्र गीत किये चौदही जु अंक ते
> ऊ चौदही भुवन को कलंक दूर करि हैं॥

संस्कृत 'हनुमन्नाटक'के अनुकरणपर अध्यायोंके नाम अङ्क हैं। कथोपकथनकर्ता पात्रोंके नाम देकर उनके कथन दिये गये हैं और बीच-बीचमें कवि कथा-शृङ्खलाको जोड़ता

चलता है । कवि मङ्गलाचरणमें स्पष्ट कर देता है कि मेरे इष्टदेव भगवान् राम हैं । 'महर्षि विश्वामित्र, राम-लक्ष्मणकी याचना करने अयोध्या आते हैं' इस प्रसङ्गसे प्रारम्भ कर रावण-वधोपरान्त राम-राज्यारोहणपर नाटक समाप्त किया गया है। नाटककी शैली अलंकृत है और इसके वर्णन बड़े सुन्दर तथा काव्यात्मक हैं । इस हनुमन्नाटकपर संस्कृतके हनुमन्नाटकके अतिरिक्त तुलसीके मानसका भी प्रभाव स्पष्ट है । एक उदाहरण निम्नाङ्कित है—

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मँगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥
हृदयँ दाहु अति वदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
( २ । ९३ । २-३ )

हिन्दी हनुमन्नाटक—

राज समाज उतार सबै, रघुराज कही अब है सब फीको।
ले बट दूध बनाय जटा, सिर बीर है, भ्रात बनावत नीको॥
देखहु काल बली 'कविराम' छोड़ाज सिंहासन औधपती को।
मानस क्यों मन में पछताय सुरामहि वेष कियो तपसी को॥
( २ । ८३ )

भक्तिकालमें मर्यादावादी धाराके अन्य जन-कवि जसवन्त ( सं० १६६५ में वर्तमान )ने रामविषयक कतिपय पदोंकी रचना की । प्राणचन्द चौहानने १६६७ वि०में दोहा-चौपाईमें अवधी भाषामें 'रामायण-महानाटक'की रचना की; जिसपर तुलसीका प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यह एक प्रकारसे नाटकीय काव्य-ग्रन्थ ही है। इसके अतिरिक्त दो खण्ड काव्य भी प्राणचन्दने लिखे, जिनके नाम हैं—'अहिरावण-कथा' और 'अङ्गद-पैज' । माधवदास चारणने राजस्थानीमें 'राम-रासौ'में वाल्मीकि-कथाका संक्षिप्त रूप उपस्थित किया । माधवदासकी दूसरी काव्य पुस्तक है—'अध्यात्मरामायण भाषा' ( रचना-काल १६८१ वि० ) । कपूरचन्द 'चन्द'ने भी ( १७०० वि०में ) एक रामचरितकी रचना की ।

लालदास ( १६७०–१७३२ वि० )ने भरतकी बारहमासी ( १६९० वि० ) तथा 'अवधविलास' ( १७०० वि० ) ग्रन्थ अवधीमें बनाये । मानदास ( जन्मतिथि १६८० वि० ) ने वाल्मीकिपर आधारित 'रामचरित्र' काव्य-ग्रन्थ लिखा । इनका भी एक अलग 'हनुमन्नाटक' है, जो संस्कृत 'हनुमन्नाटक'के आधारपर ही रचित है । महाराज पृथ्वीराज राठौर ( जन्म १६०८ वि० )ने 'दशरथ राउत' ( स्तुति-काव्य ) रचा, जिसमें रामकथाके कुछ प्रसङ्ग समाहित हैं । चतुरदास ( समय १६९२ वि० )ने माधुर्य भावपरक दो ग्रन्थ रचे—'रामाष्टक' और 'जनकनन्दिनी-अष्टक' । मलूकदास ( जन्म १६३१ वि० ) ने दोहे-चौपाईमें रामावतार-लीलाका निर्माण किया, उसमें निर्गुण रामकी स्थापना है। पुरुषोत्तमने भी 'रामायणतत्त्व' की रचनाकी, इसमें हनुमान्‌द्वारा सीता-खोज विस्तारसे वर्णित है । इसका रचना-काल १७०१ विक्रमीय है ।

गुरु गोविन्दसिंह ( जीवन-काल १७२३—१७६५ वि० )-कृत गोविन्दरामायण वीररसका रामकाव्य है, जिसमें शृङ्गार भी अनुस्यूत है । इसमें काण्ड या सर्ग न होकर बाईस शीर्षकोंमें कथा वर्णित है । इसमें भरतका ननिहाल काश्मीर बताया गया है । भाषामें पंजाबीके साथ-साथ व्रज, खड़ी बोली तथा अवधीका पुट प्राप्त होता है । अनेक छन्दोंके साथ दोहा, चौपाई, छन्द भी प्रयुक्त हैं । हरदोई जिलेके कवि सहजरामकृत 'रघुवंशदीपक' एक उत्तम ग्रन्थ है, जो आकार तथा शैलीमें 'मानस'के ही समान है । कविने बड़े आदरके साथ आरम्भमें तुलसीदासजीकी वन्दना की है । प्रसिद्ध नामक कविद्वारा निर्मित 'जानकी-विजय' रामायण ( र० का० १८१३ ) भी मानसके समान ही दोहे-चौपाइयोंमें अवधी भाषामें ही रचित है । इसमें शम्बूक-वधसे सम्बद्ध कथाको ही ग्रहण किया गया है । भगवन्त राम खींचीने रामायण सातकांडीकी रचना की तथा 'हनुमत्-पचीसी' ( र० का० १८१७ )का भी प्रणयन किया । मनियारसिंहने १९वीं शतीके मध्यमें सुन्दरकाण्ड निर्मित किया । खुमान कवि ( र० का० १८३०—१८८० वि० )ने 'लक्ष्मण-शतक'में मेघनाद-लक्ष्मणयुद्धका वर्णन किया । पिता गोपाल तथा पुत्र माखनने मिलकर 'रामप्रताप' ( १८८६ वि० से पूर्व ) नामक रामकाव्यकी रचना की, जिसमें शृङ्गारिकता भी है । मुरलीधर मिश्रने व्रजभाषामें कवित्त, सवैये, छन्दोंको अपनाकर 'रामचरित' लिखा । मधुसूदनने मानसकी दोहे, चौपाई शैलीको अपनाकर 'रामाश्वमेध' नामक एक उत्तम काव्यकी रचना की, जो गोस्वामीजीके रामचरितमानसका अच्छा पूरक बन सकता है । इसके अतिरिक्त दो और 'अश्वमेध' नामके काव्यग्रन्थ रचे गये, जिनके रचयिता हैं सूरतसिंह तथा हरसहायगिरि । नवलसिंह प्रधान, उपनाम

रामानुजदास शरणने रामचन्द्रविलासकी रचना मानसकी दोहे, चौपाईवाली शैलीमें की । यह मानससे भी बृहद् रामकाव्य है, जिसमें रामचन्द्रजी कृष्णके समान ही रसिक चित्रित हुए हैं ।

सरदार कविकृत 'राम-रस-रत्नाकर' एक सुन्दर रामकाव्य है । इसमें मिथिलाकी स्त्रियोंका विनोद सीमा पार कर जाता है । संवत् १९००के आस-पास धर्मदासजीने 'अवधविलास'की रचना की, जो अब विस्तृत भूमिका एवं साज-सज्जाके साथ प्रकाशित भी हो चुका है । इसमें भी 'रामचरित'के साथ जहाँ-तहाँ शृङ्गारिकता मिली हुई है । इसमें रामकी जन्मपत्रिकाके फलादेशका सूरसागरकी प्रतिकृति होते हुए भी बड़ा ही भव्य चित्रण हुआ है । इसी प्रकार नाथूराम चतुर्वेदीकृत 'समर-सागर' ( १९१० वि० ) वीररसप्रधान व्रजभाषाका सुन्दर महाकाव्य है, जिसमें उर्मिलाका भी थोड़ा-सा वर्णन प्राप्त होता है । जानकीप्रसादकृत 'रामनिवासरामायण' ( र० का० १९३३ वि० ) व्रजभाषाका कवित्त सवैया-शैलीमें रचित रामकाव्य है, जिसमें स्वयं कविने तुलसीके ऋणको स्वीकार किया है । वनादासकृत 'उभय-प्रबोधक रामायण' अद्वैत विचारधाराका व्रजभाषाका कवित्त, सवैया लयमें रचित सुन्दर रामकाव्य है । कविने तुलसीको गुरुरूपमें स्मरण किया है । जानकीप्रसादकृत 'युक्ति-रामायण' चमत्कार-प्रधान व्रजभाषामें रचित रामकाव्य है, जिसमें कथा केवल संकेतों-द्वारा अङ्कित है । इसके अतिरिक्त अन्य रामकाव्य हैं—नरहरिदास-कृत 'अवतारचरित', सोजी मेहरबानकृत 'आदिरामायण', केशव-कविकृत 'वालिचरित' 'भूपतिकृत 'रामचरित-रामायण', नागरीदासकृत 'रामचरित्रमाला', पद्माकरभट्टकृत 'रामरसायन', रामानन्द ( राजस्थानवाले ) कृत 'लक्ष्मणायन', श्रीरामशरण रामरस रंगमणिकृत 'राम-जानकीविलास,' जनकराजकिशोरी-शरणकृत 'श्रीसीतारामरहस्यतरंगिणी', रामप्रियाशरणकृत 'सीतायन', रसिकविहारीकृत 'राम-रसायन', रघुनाथदासकृत 'विलाससागर', बाघेली कुँवरजीकृत 'अवधविलास', विश्वनाथ सिंहकृत 'आनन्दरामायण' और 'रामायण' आदि । इनमें रामके सम्पूर्ण या आंशिक चरित्रको लेकर काव्य-रचना की गयी है । हनुमान्‌जीको लेकर भी बहुत-सी रचनाएँ हुईं, जैसे भगवन्तराव खींचीकृत 'हनुमत्-पचीसी', खुमानकृत 'हनुमत्-पचीसी' मनिबारसिंहकृत 'हनुमत्-छबीसी' और गणेश-कृत 'हनुमत्-पचीसी' । नवलसिंह 'कायस्थने भी अपने 'रूपक-रामायण'में अद्भुत चमत्कार-प्रदर्शनका प्रयास किया है। संक्षेप-में इस प्रकार यह मध्यकालीन रामसाहित्यका दिग्दर्शन हुआ ।

## राम-चरितमें दिव्य रस

रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस बिसेष जाना तिन नाहीं ॥
भगत हेतु बिधि भवन बिहाई । सुमिरत सारद आवति धाई ॥
रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ । सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥
रामचरित चिंतामनि चारू । संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ॥
जग मंगल गुनग्राम राम के । दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के । मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
कहइ भुसुंड सुनहु खगनायक । रामचरित सेवक सुखदायक ॥
रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥

( रामचरितमानससे )

# भगवत्-प्रेम

( लेखक—डॉ० श्रीअनन्तजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी० )

भक्त कवि तुलसीने अकारण नहीं कहा था कि सभी 'नाते' और 'नेह' रामके आधारसे ही मानने चाहिये— 'नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।' लोकजीवनमें व्यक्ति-प्रेम आवश्यक है, पर वह भी वस्तुतः केवल इसलिये कि व्यक्तिके रूपमें भगवान्का ही अस्तित्व है। भगवान्में कोई न दोष है और न उनके गुणोंका कभी ह्रास होता है। इस कारण जब मनुष्य उनके आधारपर श्रद्धा—प्रेम या विश्व-प्रेम करता है तो भी प्रेमास्पद प्राणी आदिके प्रति अपने प्रेमको सीमित नहीं बना पाता। प्रायः प्रेमका आलम्बन सौन्दर्य है। पर लोकके सौन्दर्य नाशवान् हैं। क्रमशः उनकी दीप्ति घटती-बढ़ती रहती है। आज जो सुन्दर है, कल वह किसी रोग, आधि-व्याधिके कारण असुन्दर हो सकता है। इसलिये उसके भीतर जो नित्य सुन्दर, नित्य अस्तित्व धारणकर्ता, अर्थात् आत्मा है, उसीसे प्रेम होना चाहिये। प्रकट है कि ऐसा प्रेम ईश्वर-प्रेम ही होगा। क्योंकि यह संसार या इसका कोई भी प्राणी—आत्मा परमात्माका ही अंश है। इस प्रकारसे वह भी ईश्वर है। कोई प्रश्न कर सकता है कि फिर प्रेम किया ही क्यों जाय ? स्वभाव-विश्लेषणसे ज्ञात होता है कि मनुष्य बिना प्रेमके रह ही नहीं सकता। कामनाओं-की पूर्तिके बावजूद मनको प्रेमकी आवश्यकता होती है। एक समय आता है कि कामादिसे प्राणीकी उपरति हो जाती है, पर प्रेमसे उपरति सामान्यतया अत्यन्त कठिन है। बड़ी कठोर साधनाके परिणामस्वरूप किसीको 'स्वस्थ'-स्थिति मिल जाय तो उसका अहोभाग्य समझिये। पशुओंके विषयमें हमारी जानकारी कम-से-कम है। हम उनकी भाषा कम-से-कम समझते हैं। उनके जीवनमें पता नहीं प्रेमका महत्त्व है या नहीं। पर जहाँतक अनुभव किया गया है, मनुष्य प्रेमाकाङ्क्षी होता है। वह प्रीति-जीवी है। बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक सभी प्रीतिके बिना सूना-सूना अनुभव करते हैं। भक्तोंके जीवनको भी यदि भीतरसे झाँक कर देखा जाय तो कोई-न-कोई आध्यात्मिक भाव ही उनके निरन्तर प्रीतिका कारण रहा है। कुछ ऐसे प्रेमियोंके उदाहरण अवश्य मिलते हैं, जो अपने प्रेमास्पदके तिरस्कारके बावजूद भी उनसे प्रेम करते रहे। पर ऐसोंकी दो गति हुई। या तो वे अपने विषय-प्रेमको भगवान्के प्रेममें परिवर्तित करनेमें सफल हुए या फिर प्रेमास्पदकी बेवफाईके गीत गाते-गाते मर गये अथवा पागल हो गये।

ऐसा भी होता है कि कोई मनुष्य किसीसे प्रेम नहीं करता। पर ऐसी दशामें वह अपनेसे प्रेम करता है। अपने स्वास्थ्य, धन, रूप और बलसे उसका अनुराग रहता है। ऐसे व्यक्ति अकेलेमें अनुभव करते हैं कि उन्हें किसी और चीजकी जरूरत है। फिर वे प्रदर्शन-प्रिय हो जाते हैं। आज संसार-में इस प्रवृत्तिके विशेष फैलावका दर्शन किया जा सकता है। कोई बाजीगरीके क्षेत्रमें, कोई मसखरी-के क्षेत्रमें, कोई कुछ असाधारण कर दिखानेके क्षेत्रमें अपना-अपना करिश्मा दिखाते हैं। कभी-कभी ख्याति-के लिये लोग कुख्यात होनेकी भी जोखिम उठाते हैं। ऐसे लोग कीर्ति और धन तो प्राप्त कर लेते हैं, पर समाजको वे स्थायी लाभकी चीज नहीं दे पाते, उल्टे समाजको उनसे हानि उठानी पड़ती है।

निष्कर्ष यह कि भगवत्प्रेम एक ओर प्रीति-जीवी मनुष्यकी जिजीविषाको तृप्त करता है तो दूसरी ओर इससे सबका हित-सम्पादन स्वयं होता है। क्योंकि

भगवान् सब जातियों, सब धर्मों और सब सम्प्रदायोंसे ऊपर सबके रक्षक, पालक और दाता हैं। इसलिये मनुष्य उनसे प्रेम करके अपनी सीमामें सबका हितैषी, रक्षक, पालक बनता है। भगवत्ता प्राप्तकर वह सूर्यके समान बिना कुछ चाहे प्रकाश प्रदान करता है।

भगवत्प्रेमीका प्राणी-प्रेम भगवत्प्रेमका रूप ग्रहण-कर लोक-मङ्गलका कारण बनता है। इसमें न बिछोहका कष्ट है और न रूप-नाशकी चिन्ता। इसमें न ही कुछ पानेकी कामना है और न ही देनेका दम्भ। इसमें तृप्ति ही तृप्ति है। ऐसी तृप्ति जो प्यासको भी बढ़ाती है। इसका आकर्षण कभी न तो समाप्त होता है और न ही विकर्षणका भय उपस्थित होता है। इसमें सदा, सर्वदा आनन्द-ही-आनन्द है। मृत्यु भी इस आनन्दको छीनती नहीं, बल्कि वह सिर्फ और अधिक इस आनन्दको प्रदान करनेके लिये शक्ति प्रदान करती है। पर प्रेमका शत्रु है दम्भ। दम्भके कारण समर्पणमें बाधा उत्पन्न होती है, अतः दम्भसे बचना चाहिये। हम जो भी करते हैं, शक्तिसे करते हैं। शक्ति अपनी नहीं है। नींद भी अपनी नहीं, भूख भी अपनी नहीं। भोगनेकी शक्ति प्रकृति-प्रदत्त है। प्रकृतिके वशमें मनुष्य है, मनुष्यके वशमें बाह्य-प्रकृति हो सकती है, अन्तःप्रकृति नहीं। अन्तःप्रकृतिके स्वामी परमात्मा या भगवान्से प्रीति लगाना इस प्रकार सब प्रकारसे उत्तम है।

# महात्मा कनफ्यूशियस

( लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी )

जिस युगने भारतमें बुद्ध और महावीर तथा यूनानमें सुकरात-जैसे महान् लोकशिक्षकोंको जन्म दिया, उसी समय महादेश चीनकी गोदमें भी एक ऐसा अनूठा रत्न उपजा, जिसकी आभासे वहाँके कोटि-कोटि जनोंको जीवनके अन्धकारपूर्ण मार्गपर प्रकाश और शान्तिका वरदान मिला। कौन था, यह महामनस्वी ?

मानवकी वेदनासे तड़पकर जिन महापुरुषोंने उसे दूर करनेकी चेष्टामें अपनेको खपाया है, उन्हींमेंसे एक था यह चीनका महान् व्यक्ति जो बचपनमें क्यू, विद्यार्थी-जीवनमें 'चूंगनी' और प्रौढ़ होनेपर कुंग-फू-जीके नामसे विख्यात हुआ। पर चीनसे बाहरकी दुनिया आज उसे पाश्चात्त्य लेखकोंद्वारा रखे गये लातिनी नाम कनफ्यूशियससे ही जानती है, किंतु महादेश चीन पिछले ढाई हजार वर्षोंसे इस महात्माको कुंगके नामसे ही पूजता चला आ रहा है।

## जन्म और बचपन

आधुनिक चीनके किनफू-ह्यियेन नामक कस्बेका नाम कई शताब्दी पूर्व 'त्सिउई' था। ई० पू० छठी शताब्दीमें एक शानदार सैनिक जीवन बिताकर वहाँके प्रमुख मैजिस्ट्रेट हुए शू-लिंग-ही। अपने एकमात्र पुत्रके मर जानेके कारण नौ पुत्रियोंके पिता विधुर शू-लिंग-हीने बुढ़ापेमें अपने पदके प्रभावसे एक सरदार परिवारकी कन्याका पाणिग्रहण किया। इन्हीं दम्पतिने ईसासे ५५० वर्ष पूर्व शीतकालमें एक पुत्रको जन्म दिया। खुशियाँ मनायी गयीं, शहनाइयाँ बजीं। पर क्या उस सुदूर अतीतकी छाँहमें बैठकर इस पुत्रोत्पत्तिपर खुशियाँ मनानेवालोंको स्वप्नमें भी यह आभास हो सका होगा कि तातारी चेहरेवाला वह नवागत शिशु मानव-जातिका एक महान् विचारक, पूर्वका एक उत्कट दार्शनिक और महादेश चीनकी असंख्य पीढ़ियोंका श्रद्धेय लोक-शिक्षक होगा ?

और इस घटनाके ठीक तीन ही साल बाद वृद्ध शू-लिंग-हीका देहान्त हो गया। अब नवजात शिशुकी शिक्षा-दीक्षा और रक्षाका सारा भार आ पड़ा उसकी युवती विधवा मातापर। वैसे तो बच्चेकी शिक्षा बहुत कुछ मातापर ही निर्भर करती है, पर चीनियोंका विश्वास इस बातमें औरोंसे कुछ अधिक बढ़ा हुआ है। चीनियोंकी तो कहावत ही है कि बच्चेकी शिक्षा उसकी उत्पत्तिसे पहले ही शुरू हो जाती है। अतएव बालक कुंगकी भी प्रारम्भिक शिक्षामें माताका सबसे बड़ा हाथ रहा।

इसके एक मास ही बाद मदरसेमें किताबी शिक्षा शुरू हुई, और कहा जाता है कि चौदह सालकी उम्रमें ही इस प्रतिभाशाली बालकने वह सब कुछ पढ़ डाला, जो उन दिनोंके अध्यापक पढ़ा सकते थे।

पितृहीन बालक—निराश्रित माताका वह एकमात्र आश्रय—पढ़ता भी और अक्सर मछलियोंका शिकार और अन्य जन्तुओंका आखेट भी किया करता, ताकि माका बोझ कुछ हल्का हो सके। इससे उसके अध्ययनकी व्यवस्था और रुचिमें व्यवधान तो उपस्थित अवश्य होता, पर इसीके फलस्वरूप उसकी प्रवृत्ति गम्भीर विचार और एकान्त चिन्तनकी ओर होने लगी। अन्तमें इसके सत्रह सालकी अवस्थातक पहुँचते-न-पहुँचते वह अवसर भी आ गया जब कि मा बेटेको अध्ययनसे विरत करके किसी लाभदायक व्यवसायमें लगा सके। युवककी विद्याकी ख्याति राजदरबारतक पहुँच ही चुकी थी, अब उसका उसमें सहज प्रवेश भी हो गया।

अब धनकी प्रचुरता हुई, एक पुत्र भी हुआ। दरबारमें सम्मान होने और द्रव्याभावके मिट जानेसे मानव-जातिके इस भावी शिक्षककी जीवन-धारा एक विशेष दिशामें प्रवाहित होने लगी। पर शीघ्र ही वह धारा एक दिन रुक गयी और उसकी दिशा एकदम बदल गयी।

## जीवनका नया मोड़

वह यह कि अभी उसका चौबीसवाँ ही साल आरम्भ हुआ था, उसकी स्नेहमयी जननी भी एकाएक चल बसी। इस असह्य आघातको उस मानवहितैषीका कोमल हृदय सहन नहीं कर सका। माताकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त करके अब उसने पुनः एकान्तका जीवन अपनाना प्रारम्भ कर दिया। फिर वही चिन्तन, मनन और शिक्षण आदि।

पूर्वके अनेक भाग्यवादी विचारकोंने मानवके दुःखोंका निवारण प्रायः संतोष और सहनशीलतामें दुःखोंके आदर्शीकरणमें पाया है। दुर्बलोंको ऊँचा उठाना नहीं, वरन् उनपर दया करना उनका आदर्श रहा है। कनफ्यूशियसका वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं था। कहते हैं, लगभग २७ वर्षकी अवस्थामें ही कुंगको अपनी पत्नी त्याग देना पड़ा था। इतिहासको इसका कोई कारण ज्ञात नहीं है और न स्वयं कनफ्यूशियसहीने इस विषयपर कोई विशेष प्रकाश डाला है। पर इतना निर्विवाद है कि यह घटना पत्नीके किसी अपराधके कारण नहीं घटी थी, क्योंकि कई साल बाद जब कनफ्यूशियसने उसकी मृत्युका समाचार सुना था तो वह अत्यन्त दुःखी हुआ था।

## राज्यमन्त्री और न्यायाधीशके रूपमें

चीनका बादशाह 'लूका' अपने मुसाहिबोंके प्रभावसे पहले तो कुंगकी शिक्षाका घोर विरोधी हो गया था, पर राज्यकी दिनों-दिन बिगड़ती हुई अवस्थाने उसे अन्तमें विवश किया कि वह इस विचारकसे सहायता प्राप्त करे और अपनी नष्ट होती हुई सत्ताको पुनः स्थापित करे। अतएव कनफ्यूशियस फिर सार्वजनिक जीवनमें एक राज्य-मन्त्रीके रूपमें आया। इस पदपर स्थित होते ही उसने लोक-हितके अनेक कामोंद्वारा राज्यकी अवस्थामें पूरी कायापलट कर दी। मन्त्रीके पदके साथ ही उन दिनों चीनमें प्रधान न्यायाधीशका पद भी जुड़ा हुआ था। अतएव शासनके साथ-साथ उसे न्याय भी करना पड़ता था।

एक बार आवारागर्दीकी हालतमें उसे प्रदेशकी सीमामें पहुँचनेपर वहाँके राज्याधीशने कुंगसे प्रश्न किया था कि अच्छा शासन किसे कहते हैं?

कनफ्यूशियसने उसका तत्काल ही जवाब दिया—अच्छे शासनकी सफलता उस स्वाभाविक सम्बन्धको कायम रखनेमें है, जो मनुष्य-मनुष्यके बीच होनी चाहिये। शासकमें राजोचित चरित्र, प्रजामें राजभक्ति, माता-पितामें वात्सल्य और बच्चोंमें श्रद्धा होनी चाहिये। वस्तुतः उन दिनों इतना कह सकना आसान न था? क्योंकि तब न्याय होता था प्रायः सरदारों और राजाओंके लिये, आम जनताके लिये बहुत कम। एक बार अपने न्यायाधीश पदसे उसने एक दुश्चरित्र सरदारको प्राणदण्ड दिया। इस कार्यपर क्षोभका एक समुद्र उमड़ पड़ा और कनफ्यूशियसके शिष्यों और मित्रोंतकको इसपर आपत्ति हुई। पर वह अटल रहा। उसने कहा—मैं आप लोगोंकी भावनाओंका आदर करता हूँ, यद्यपि आप गलतीपर हैं। पर आपकी गलती आपके अज्ञानपर आधृत है। क्या आपको मालूम नहीं है कि बहुतेरे अपराध ऐसे होते हैं, जो देखनेमें साधारण-से लगते हैं, पर अवहेलना करनेपर कालान्तरमें मनुष्यको बड़ा अपराधी बना देते हैं। फिर एक ऐसा सरदार, जो स्वभावसे ही पाखण्डी, झूठा, निन्दक और अत्याचारी है, कठिन-से-कठिन दण्डके ही योग्य है। जिसके लिये आप अफसोस कर रहे हैं, वह न केवल एक, बल्कि अनेक भीषण

अपराधोंका अपराधी था, जिसे क्षमा करना कमजोरी होती, साथ ही न्यायके साथ विश्वासघात भी।

कनफ्यूशियसने लोक-शिक्षकोंकी तरह अपना कोई अलग धर्म नहीं स्थापित किया, यद्यपि उसके बाद कनफ्यूशियस-धर्मनामक एक मत स्वयं ही पैदा हो गया, और आजके चीनका लगभग एक तिहाई जन-समूह इसी मतको मानता है।

कनफ्यूशियसके जीवनकालका वह समय, जब कि वह मुसीबतोंका मारा यहाँसे वहाँ दर-दरकी खाक छानते हुए भटकता फिरता रहा, एक दर्दभरी कहानी है। अपने कुछ शिष्योंको साथ लिये हुए वह एक राज्यसे दूसरे राज्यकी ठोकरें खाता रहा, पर कहीं भी उसे पनाह न मिली। इस तरह भटकनेकी दशामें कई ऐसे विरत संन्यासियोंसे उसकी भेंट हुई, जो मनमें संसारके प्रति ग्लानि उत्पन्न हो जानेके कारण सब कुछ छोड़-छाड़ कर दुनियासे दूर बसते थे। कनफ्यूशियसको इस प्रकार मारे-मारे फिरनेके बावजूद भी शिक्षाद्वारा क्रूर मानव-जातिका सुधार करनेकी ओर प्रवृत्त देखकर ये लोग आश्चर्य करते थे।

यद्यपि उसका वह आदर्श राज्य कभी भी स्थापित न हो सका, किंतु उसकी दी हुई शिक्षा दृढरूपसे आनेवाली पीढ़ियोंके मनपर अङ्कित हो गयी। लगातार ढाई हजार वर्षसे लाखों-करोड़ों मनुष्योंके हृदयपर शासन करते रहना क्या किसी भी बड़े-से-बड़े साम्राज्यका अधिपति होनेसे कम गौरवकी बात है? इतिहासमें सिकंदर, चंगीज खाँ और नेपोलियन-जैसे अनेक विश्वविजेताओंकी गाथाएँ हमें मिलती हैं, पर वे अब इतिहासके पन्नोंहीमें रह गयी हैं। इसके विपरीत, विजेताओंका एक और वर्ग भी हमें मिलता है, जिन्होंने मनुष्यको कुचलकर भूमि या सम्पत्तिपर विजय पानेके बजाय अपना सर्वस्व त्यागकर मनुष्योंके हृदयपर विजय पानेहीमें अधिक संतोष माना। ऐसे लोग प्रायः अपने जीवनकालमें भिखारी ही रहे—उनमेंसे बहुतेरे पीड़ित भी किये गये—किंतु आज न सिर्फ इतिहासहीमें उनके नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित हैं, प्रत्युत उनका प्रकाश हजारों-लाखों घरोंका अन्धकार दूर करता हुआ उनकी अमरताका परिचय दे रहा है। महात्मा कुंग भी इसी प्रकारके लोगोंमेंसे थे।

## उपसंहार

कनफ्यूशियसकी शिक्षाका सार उसके द्वारा प्रतिपादित इस सुन्दर वाक्यमें निहित है—'दूसरोंसे तुम अपने प्रति जैसे बर्तावकी आशा करते हो, वैसा ही बर्ताव तुम स्वयं भी औरोंके साथ करो'। वास्तवमें बुद्ध, जरथुस्त्र आदि संसारके अन्य कई धर्मसंस्थापकों और कनफ्यूशियसमें एक महान् अन्तर है। उन लोगोंने प्राचीन सामाजिक या धार्मिक रूढियोंके ढाँचेको गिराकर उसपर एक नई इमारत खड़ी की थी। इसके विपरीत कनफ्यूशियस न तो विध्वंस, न बिल्कुल नवीन रचनाहीका पक्षपाती था, बल्कि वह समाजके ढाँचेका प्राचीनरूप स्थायी रखते हुए उसे और भी अधिक संगठित करनेका हिमायती था। कनफ्यूशियसके बाद उसके मतको प्रतिपादित करनेवालोंमें मेन्शियस ( ३७२-२८९ ई० पू० ) बड़े स्वतन्त्र विचारवाला तत्त्वचिन्तक हुआ। मानव-प्रकृतिकी जन्मजात अच्छाईमें उसकी गहरी श्रद्धा थी। वह मानता था कि केवल बुराईके वातावरणके प्रभावसे मनुष्यके विचार और कर्म बुरे बन जाते हैं। अतः हमें अपनी जन्मजात सत्प्रवृत्तियोंके विकासके लिये आत्मसंयमकी ओर ध्यान देना चाहिये।

# भगवान्‌की विस्मृतिका पश्चात्ताप

एक बार गाँधीजीको दक्षिणभारतके दौरेमें चर्खा-दंगल देखनेमें बड़ी रात हो गयी। वहाँसे जब वे लौटे, तब इतने थक गये थे कि एक चारपाईपर लेटते ही उन्हें नींद लग गयी। दो बजे नींद खुली तो उन्हें स्मरण आया कि सोनेके पूर्व वे प्रार्थना करना भूल गये। फिर तो वे सारी रात सोये नहीं। उनके मनपर बड़ा आघात पहुँचा। शरीर थर-थर काँपने लगा। सारा बदन पसीनेसे लथपथ हो गया। प्रातःकाल लोगोंने जब पूछा, तब सारी बात बतलाते हुए उन्होंने कहा—'जिसकी कृपासे मैं जीता हूँ, उस भगवान्‌को ही भूल गया, इससे बढ़कर बड़ी गलती और क्या होगी।'

# सद्गुरुद्वारा शिष्यका उद्बोधन

किसी राष्ट्रकार्यके धुरंधर अथवा साधारण-से व्यक्तिमें समस्त दुर्गुणोंका अग्रणी अहंकार या अभिमान जब प्रवेश पा जाता है, तब उसके कार्यमें होनेवाली उन्नतिकी बात तो दूर रही, किये हुए कार्योंपर भी पानी फिरनेमें विलम्ब नहीं लगता। पर यदि उसे यथासमय सचेत कर दिया गया तो वह यशके शिखरपर पहुँच ही जाता है। इस प्रकारकी अनेक कथाएँ अपने इतिहास-पुराणादिमें हैं। अभी केवल २५० वर्ष पूर्वकी भी एक 'सच्ची घटना' इस प्रकार है—

हिंदू-स्वराज्य-संस्थापक श्रीशिवाजी महाराजके सद्गुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामी महाराजका तपःसामर्थ्य और उनका किया हुआ राष्ट्रकार्य अलौकिक है। सद्गुरुके द्वारा निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करके श्रीश्रीभवानी-कृपासे श्रीशिवाजी महाराजने कई किले जीत लिये। उस समय किलोंका बड़ा महत्त्व था। इसलिये जीते हुए किलोंको ठीक करवाने एवं नये किलोंके निर्माणका कार्य सदा चलता रहता था और इस कार्यमें हजारों मजदूर सदा लगे रहते थे। सामनगढ़ नामक किलेका निर्माण हो रहा था, एक दिन उसका निरीक्षण करनेके लिये श्रीशिवाजी महाराज वहाँ गये। वहाँ बहुसंख्यक श्रमिकोंको कार्य करते देखकर उनके मनमें एक ऐसी अहंकारभरी भावनाका अङ्कुर उत्पन्न हो आया कि 'मेरे ही कारण इतने जीवोंका उदर-निर्वाह चल रहा है।' इसी विचारमें वे नदी-तटपर घूम रहे थे। अन्तर्यामी सद्गुरु श्रीसमर्थ इस बातको जान गये और 'जय जय रघुवीर समर्थ'की रट लगाते हुए अकस्मात् न जाने कहाँसे वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही श्रीशिवाजी महाराजने आगे बढ़कर दण्डवत्-प्रणाम किया और पूछा, 'सद्गुरुका शुभागमन कहाँसे हुआ?' हँसकर श्रीसमर्थ बोले—'शिवा! मैंने सुना कि यहाँ तुम्हारा बहुत बड़ा कार्य चल रहा है, इच्छा हुई कि मैं भी जाकर देखूँ। इसीसे चला आया। वाह शिवा वाह। इस स्थानका भाग्योदय और इतने जीवोंका पालन तुम्हारे ही कारण हो रहा है।' सद्गुरुके श्रीमुखसे यह सुनकर श्रीशिवाजी महाराजको अपनी धन्यता प्रतीत हुई और उन्होंने कहा—'यह सब कुछ सद्गुरुके आशीर्वादका ही फल है।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए वे किलेसे नीचे, जहाँ मार्ग-निर्माणका कार्य हो रहा था, आ पहुँचे। मार्गके बने हुए भागमें एक विशाल शिला अभी वैसी ही पड़ी थी। उसे देखकर सद्गुरुने पूछा—'यह शिला यहाँ बीचमें कैसे पड़ी है?' उत्तर मिला—'मार्गका निर्माण हो जानेपर इसे तोड़कर काममें ले लिया जायगा।' श्रीसद्गुरु बोले—'नहीं, नहीं, कामको हाथों-हाथ ही कर डालना चाहिये, अन्यथा जो काम पीछे रह जाता है, वह हो नहीं पाता। अभी कारीगरोंको बुलाकर इसके बीचसे दो भाग करा दो।' तुरंत कारीगरोंको बुलवाया गया और उस शिलाके समान दो टुकड़े कर दिये गये। सबोंने देखा कि शिलाके अंदर एक भागमें ऊखल-जितना गहरा एक गड्ढा था, जिसमें पर्याप्त जल भरा था और उसमें एक मेढक बैठा हुआ था। उसे देखकर श्रीसद्गुरु बोले—'वाह, वाह, शिवा, धन्य हो तुम! इस शिलाके अंदर भी तुमने जल रखवाकर इस मेढकके पोषणकी व्यवस्था कर रक्खी है।' बस, पर्याप्त थे इतने शब्द श्रीशिवाजी-छत्रपतिके लिये। उनके चित्तमें प्रकाश हुआ। उन्हें अपने अहंकारका पता लग गया और पता लगते ही—इतने लोगोंके पेट मैं भरता हूँ—इस अभिमान-तिमिरका तुरंत नाश हो गया। उन्होंने तुरंत श्रीसद्गुरुके चरण पकड़ लिये और अपराधके लिये क्षमा-याचना की।

—एम्० एन्० धारकर

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## रामरक्षास्तोत्रके पाठसे भयंकर विनाशकारी अग्निकाण्डमें भी सम्पत्ति-रक्षा

भयंकर अग्निकाण्डकी यह घटना ३ जून १९७४ की है, जिसने सारे कलकत्ते नगरको झकझोर दिया। रात दो बजे फोनकी घंटी बजती है। प्रभुका स्मरण करते हुए नींद खुल जाती है—उधरसे आवाज आती है—'जिस इमारतमें तुम्हारा आफिस है, भयंकर आग लग गयी है।' फिर आफिसके दरवानने भी ऐसी ही सूचना दी। भयानक क्षतिका ध्यान आते ही हृदय अत्यन्त दुःखी हो गया। मेरे पतिदेव उस समय व्यापारिक कार्यसे बाहर गये हुए थे। मैं दरवानको अग्निकी गतिविधिकी सूचना निरन्तर देते रहनेको कहकर प्रभुका स्मरण करने लगी। इधर सूचना मिलती गयी कि 'अग्निका वेग निरन्तर भयंकर ही होता जा रहा है। दस-पंद्रह दमकल अपनी पूरी शक्तिसे आगको नियन्त्रित करनेके लिये बराबर प्रयत्नशील हैं, पर आगपर नियन्त्रण नहीं हो पा रहा है।' ऐसी सूचनाएँ सुनकर कलेजा मुँहको आ रहा था। ऐसे संकटके समयमें मेरे मनकी करुण पुकार सुननेवाले केवल अन्तर्यामी भगवान् श्रीराम ही थे तथा मेरा अवलम्ब रह गया था, 'रामरक्षास्तोत्र'का एकमात्र पाठ, जिसकी प्रेरणा कभी मुझे 'कल्याण'के माध्यमसे प्राप्त हुई थी।

इधर आगका वेग प्रचण्डरूपसे बढ़ता गया और प्रातः होते-होते पूरी इमारत चारों ओरसे अग्निमें घिर गयी। लगभग चौबीस आफिसोंके मालिक तथा कर्मचारी इस भयंकर विनाशकारी दृश्यको निरुपाय देख रहे थे। पतिदेवको इस भयंकर अग्निकाण्डकी सूचना स्टेशनपर ही मिल गयी थी। वे भी घटना-स्थलपर पहुँचे और उन्हीं विवश भयभीत जन-समूहमें सम्मिलित हो निरुपाय खड़े-खड़े पावकका प्रचण्ड ताण्डव देखते रहे।

अग्निके प्रचण्ड वेगसे दो दिनोंके अंदर तीनों तल्लेके सभी मकान भस्म हो धराशायी हो गये। हमारा आफिस दूसरे तल्लेपर था। पूज्य स्वर्गीय श्वशुरजीका वर्षोंका बनाया कारोबार नष्ट हो गया होगा—यही विचार प्रतिपल मनको संतप्त कर रहा था। महानगरी कलकत्तेमें इस भयंकर अग्निकाण्डकी सर्वत्र चर्चा थी। पिछले ३०–३५ वर्षोंमें ऐसा अग्निकाण्ड नहीं सुना गया था। करोड़ोंकी सम्पत्ति नष्ट हो गयी, उस सेन्ट्रल बैंककी इमारत भस्मीभूत हो जानेसे।

अग्निका वेग कम हुआ तो कुछ लोगोंका विचार हुआ कि इमारतके पीछे हिस्सेमें जमादारकी सीढ़ीसे चढ़कर ऊपर जाकर देखना चाहिये, सम्भवतः कुछ पता लग सके। फायर ब्रिगेडवालोंसे बड़ी कठिनाईसे स्वीकृति मिली। पतिदेव ऊपर जाकर आफिसके पिछले दरवाजेका ताला खोलते ही यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये कि सब कुछ यथास्थान सुरक्षित पड़ा है। वहाँ तो अग्निका धुँआतक प्रवेश नहीं कर सका था, जब कि लोगोंका कहना था कि अग्नि उसी तल्लेसे आरम्भ हुई थी। चपरासीने आकर बताया—'अपना आफिस सुरक्षित है' पर यह विश्वास नहीं हो रहा था। यह कैसी प्रभुकी अद्भुत अलौकिक लीला है! मैं तो गद्गद हो गयी। इस भगवत्कृपाका ध्यानकर और मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी निर्झरणी प्रवाहित हो चली। लंकाकाण्डका वह प्रसङ्ग स्मरण हो आया—पूरी लंका जल गयी, किंतु विभीषणके घरको अग्निका स्पर्शतक नहीं हुआ—सब लोग आश्चर्य कर रहे थे। फिर हम तो साधारण जीव। चार तल्लेके भस्मीभूत खंडहरमें झूलता हुआ यह दो तल्लेका एक भाग कैसे बचा रहा। 'रामरक्षास्तोत्र'के उस प्रभाव तथा भगवान्की उस अद्भुत अहैतुकी कृपाका स्मरण कर आज भी मेरे नेत्र प्रेमाश्रुसे छलछला उठते हैं।

—मञ्जुरानी सरस्वती

( २ )

## अधिकारीकी ईमानदारी

रणथम्भौर दुर्ग सवाईमाधोपुर स्टेशनसे तेरह किलोमीटर दूर गगनचुम्बी पर्वतकी चोटियोंसे घिरा हुआ प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग है। यह सुनसान वन-प्रदेशमें आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये हुए अपनी महानताका परिचय दे रहा है। मुख्य दरवाजेपर रखा हुआ हम्मीरका सिर भी इतिहासकी पुरानी स्मृतियोंको तरोताजा कर देता है। इसी दुर्गके पास पर्वतकी चोटीपर गणेशजीका एक भव्य मन्दिर बना हुआ है। यात्रियोंके लिये यह गणेशजीका मन्दिर प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है, जहाँ सैकड़ोंकी संख्यामें यात्री प्रतिदिन श्रीगणेश-भगवान्के दर्शनार्थ पहुँचते हैं। गणेश-चतुर्थीपर यहाँ बहुत बड़ा मेला भी लगता है। मेलेके समय दूर-दूरसे भक्त लोग गणेशजीकी सेवामें उपस्थित हो

प्रस्तुत घटना इसी जुलाई ७६की ही है। मेरे एक साथीने, जो मेरे साथ ही राजकीय चिकित्सालय, लाखेरीमें कार्यरत हैं, रणथम्भौर दुर्गपर श्रीगणेशजीके मन्दिरपर एक रातका जागरण एवं कीर्तन करनेका कार्यक्रम बनाया। दिनाङ्क १७ जुलाईको मैं अपने पंद्रह साथियोंसहित लाखेरीसे रेलद्वारा सवाईमाधोपुर स्टेशन पहुँचा। सवाईमाधोपुर स्टेशनसे रणथम्भौर दुर्गके मुख्य दरवाजेतक टेम्पूद्वारा और बादमें लगभग चार मीलका रास्ता जो कि उबड़-खाबड़ पथरीला था, पैदल तय कर हमलोग लगभग तीन बजे गणेशजी-की शरणमें पहुँच गये। रात्रिको कीर्तन, भजन और जागरण हुआ।

दिनाङ्क १८ जुलाईको प्रायः ५० व्यक्तियोंके लिये रसोई-का आयोजन था। इसीलिये अपने अन्य साथियोंसहित अस्पतालके कम्पाउंडर तथा नर्स भी रेलद्वारा सवाईमाधोपुर पहुँचे। ये सभी रणथम्भौर जाने-हेतु ट्रक-ड्राइवरसे बातचीत कर ट्रकमें बैठी गये; परंतु कम्पाउंडरका हैंडवेग, जिसपर उनका पता भी लिखा हुआ था, और जिसमें करीब ५०-६० रुपयेकी दवा तथा अन्य सामान थे और एक नर्सका एक स्टेनलेस-स्टीलका फोल्डिंग छाता, जिसे पाँच दिन पहले ही उसने ७० रु० में खरीदा था, यह सब सामान स्टेशन बजरियाके चौराहेपर भूलसे रह गया। ट्रकमें बैठनेके दस मिनट बाद हमें स्मरण आया और वापस जाकर देखा तो हैंडवेग और छाता दोनों ही गायब थे। मनमें बहुत कष्ट हुआ, परंतु गणेशजीका स्मरण करके दोनों ही साथियोंने अपने अन्य साथियोंके साथ आगेकी यात्रा तय करके दोपहरके दो बजे गणेशजीके सामने अपनी दुःखद स्थिति कहकर सुनायी।

दोपहरको भोजन कर गणेशजीको प्रणाम कर हम पचासों साथी सवाईमाधोपुर स्टेशन पर ही वापस आये। फिर वहाँसे रातको जनता एक्सप्रेसद्वारा लाखेरी आकर विश्राम किया। खोये हुए सामानका मिलना-न-मिलना बुद्धिके दाता विनायक भगवानपर ही छोड़ चुके थे। भगवान् गणेशजीकी कृपा कहें या उन मानवताके प्रतीक सज्जनकी। घटनाके दो दिन बाद दिनाङ्क २० जुलाईको श्रीमान् सुरेन्द्रसिंह राजावत, ऑडीटर, सहकारी भूमिविकास-बैंक, सवाईमाधोपुरने कम्पाउंडर साहब-को टेलीफोनद्वारा सूचना दी कि आपका हैंडवेग और छाता बैंक-कार्यालयमें मेरे पास सुरक्षित रखे हैं, अतः आकर उन्हें प्राप्त कर लें।

उसी दिन कम्पाउंडर साहबने सवाईमाधोपुर पहुँचकर अपने सामान ज्यों-के-त्यों प्राप्त किये और उक्त सज्जनको बार-बार धन्यवाद देते तथा सराहना करते हुए वापस आये। मनको लगा कि भगवान् गणेशजीकी कृपा पूर्णतया साकार हुई।

—कुँवर तिमनसिंह

( ३ )

## सुन्दरकाण्डके पाठका प्रभाव

यह घटना बनारसकी है। सन् १९७२-७३में मैं वाराणसी-में 'हिन्दू विश्वविद्यालय'में 'ग्रन्थालय-विज्ञान'का विद्यार्थी था। सत्र पूर्ण होनेमें अभी कुछ दिन शेष थे। मैं परीक्षा-हेतु जी-तोड़ परिश्रम कर रहा था। एक दिन कक्षामें ही मेरी आँखोंकी ज्योति अचानक चली गयी। मैं नेत्र-चिकित्सा-हेतु नेत्र-चिकित्सक प्रो० डॉ० के० एस्० मेहराकी शरणमें गया, परंतु १४ दिनोंतक निरन्तर प्रयास एवं परीक्षणके बाद भी नेत्रसम्बन्धी कोई रोगका लक्षण ( Diagnosis ) स्पष्ट नहीं हुआ और तब फिर मैंने न्यूरोलोजी विभागाध्यक्ष डॉ० बी० सी० कटियारसे सम्पर्क स्थापित किया, जिन्होंने न्यूरोसर्जन डॉ० यू० एम्० चौधरीके सहप्रयाससे यह पाया कि मुझे ब्रेन-ट्यूमर ( Brain Tumour ) हो गया है, जिसका आपरेशन ही एकमात्र उपाय है। संक्षेपमें कहूँ कि मेरा जीवन खतरेमें था। इधर नेत्र-ज्योतिहीन मूर्च्छासे ग्रस्त मेरी कर्णेन्द्रियाँ भी शिथिल हो गयीं। सब कहीं नैराश्य व्याप्त हो गया।

मेरी धर्मपत्नीने ढाढ़स बँधाया और मुझे भगवान्का स्मरण करनेकी सलाह दी। मेरी इच्छा थी कि मैं अपने पूज्य गुरुदेवको एक पत्र लिखकर उन्हें अपनी दयनीय दशाकी जानकारी करा दूँ और मैंने वैसा किया भी। मेरा पत्र पाते ही पूज्य गुरुदेवने, जो उन दिनों विठूरमें थे, अपनी सेवामें निमग्न मेरे एक रिश्तेदारको यह आदेश दिया कि मेरे कल्याणार्थ वे हनुमान्जीका दर्शन कर उन्हें 'सुन्दरकाण्ड'का सम्पुट पाठ सुनायें। इतना ही नहीं उन्होंने बिना किसी सूचनाके आपरेशनके ठीक एक दिन पूर्व बनारसस्थित सर-सुन्दरलाल चिकित्सालय पहुँचकर मुझे भी दर्शन देनेकी कृपा की।

इसके पूर्व मेरे पिताजी मेरे एक प्राध्यापकके कहनेसे वाराणसीमें आपरेशन न कराकर दिल्लीमें जानेका निर्णय दुःखपूर्ण हृदयसे ले चुके थे, परंतु गुरुदेवके आने तथा

उनके दृढ़ निषेधसे यह निर्णय बदलना पड़ा। २५ अप्रैल १९७३ को प्रातः ७ बजे मुझे आपरेशन थियेटरके भीतर पहुँचाया गया। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि मेरे सभी समीपी, मित्रगण एवं प्राध्यापक-वृन्द कातर-भावसे मुझे आपरेशन थियेटरमें जाते देख रहे थे और मैं भी किंचित् उदास नहीं था, वरन् पूज्य श्रीगुरुदेवकी आशीर्वादात्मक पूर्ण विश्वासकी मुखाकृति मेरे सजल नेत्रोंमें समायी हुई थी। यहाँतक कि मैंने अपनी धर्मपत्नीको सान्त्वना और धीरज बँधानेकी भी एक बात नहीं की। निरन्तर ९ घंटेके आपरेशनके बाद सायं ५ बजे मैं होशो-हवाशमें अपने वार्डमें लाया गया। अब मैं सुन्दरकाण्डके उस पाठ, श्रीहनुमान्‌जीकी अतुलित कृपा तथा गुरुकृपासे पूर्ण स्वस्थ हूँ। उसी वर्ष जुलाईमें मैंने अपना कार्यभार भी सँभाल लिया। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीकी आराधना तथा श्रीभगवत्-कृपापर दृढ़ विश्वास कर अब मैं अपना जीवन सानन्द व्यतीत कर रहा हूँ।

—राजेन्द्र दीक्षित

( ४ )

## 'रात्रिसूक्त'का चमत्कार

मेरे घरमें प्रायः रात्रिमें जानवर नहीं आते। परंतु उस दिन रात्रिमें लगभग ३ बजे बाहरकी बड़ी खिड़कीसे जो गर्मीके कारण खुली थी, जिसमें लोहेकी छड़ें भी लगी हुई थीं, न जाने कैसे एक बिल्ली प्रविष्ट हो गयी। एक स्टीलका बड़े मुँहका लोटा नीचे पड़ा था, जिसमें-का दूध बच्चोंको पिला दिया गया था। बर्तन ( लोटा ) खाली पड़ा था और उसमें थोड़ा भी दूध शेष नहीं था, पर इस बिल्लीने अपना मुँह उसमें डाल दिया और वह लोटेके मुँहमें जा अटका। पूरे चौकमें इधर-उधर घूमकर लोटेको गिराकर बिल्ली अपना मुँह बाहर निकालनेका असफल प्रयत्न करती रही। हमलोग आवाजसे जाग्रत हो गये और उसको बचानेका उपाय सोचने लगे। मेरी पत्नीने लोटा पकड़कर खींचनेका प्रयत्न किया तो बिल्लीने अपने पंजोंसे उसके हाथोंपर प्रहार किया। मैंने सोचा कि इसको जोरसे खींचा गया तो कदाचित् इसका मुँह लोटेसे टूट सकता है। इस अनिष्टकी आशङ्कासे मैं भयभीत भी हो गया। इधर इसका प्राण बचाना और उधर कहीं रक्षा करते हुए उसके अङ्गको कोई हानि न पहुँच जाय, यह द्वंद्व चलता रहा।

इधर बिल्लीका दम घुटने लगा और वह हताश होकर गिर गयी। मैंने सोचा कि घरका मुख्य दरवाजा खोल दूँ, परंतु मेरी पत्नीने मना किया और कहा कि 'इसका मुँह अन्दर होनेसे दिखायी नहीं देता है और अधिक प्रयत्नके कारण यह बिल्कुल थक गयी है।' कदाचित् बाहर निकलते ही इसको कुत्ते मार दें।' मैंने उसकी नेक सलाहको मन-ही-मन स्वीकार किया और चुप रहा।

अब ऐसा लगा कि बिल्ली बिल्कुल कुछ क्षणके लिये ही शेष है। हमने निरुपाय होकर मोहल्लेमें आवाज दी। एक सज्जन आये। उन्होंने कहा कि अब तो यह कुछ मिनटोंमें मर जायगी।

अब हम लोगोंकी ही हालत खराब होने लगी। उस दिन भगवान् सत्यनारायणका पूर्णिमा-व्रत एवं पूजन हुआ था। मैंने द्रवीभूत होकर पराम्बाकी 'रात्रिसूक्त' से प्रार्थना की तो तत्काल वह बिल्ली उठकर नीचे चौकमें जो पानीके मटके पड़े थे, उनके पास गयी और उनके बीचमें फँसकर न जाने कैसे स्वयं लोटेमेंसे मुँह निकालकर भाग गयी, मानो साक्षात् पराम्बाने ही अपने समीप बुलाकर उस बिल्लीका संकट-हरण करके ( लोटा निकालकर ) उसे जीवन दान दिया हो।

हमने इस अद्भुत घटनाको देखकर भगवान् एवं भगवतीको करबद्ध होकर विनीत भावसे नमस्कार किया। लगभग आध घंटेके बाद मुझे शान्ति मिली, क्योंकि बिल्लीकी मृत्यु-भयसे मेरा हृदय अत्यन्त घबड़ा गया था।

—पं० राधावल्लभ शर्मा

( ५ )

## न्यायकी मर्यादा

बहुत पहलेकी बात है, दिल्लीका बादशाह गयासुद्दीन बाणसे निशाना मारनेका अभ्यास कर रहा था। अचानक एक बाण लक्ष्यसे भटक गया और एक बालकको लगा। बेचारा बालक बाण लगनेसे वहीं ढेर हो गया। बालककी माता दिल्लीके प्रधान काजी सिराजुद्दीनके पास रोती हुई गयी। काजीने उसे दूसरे दिन न्यायालयमें उपस्थित होनेको कह दिया।

न्यायनिष्ठ काजीने बादशाहके पास संदेश भेज दिया कि उनके विरुद्ध हत्याका अभियोग है, अतः वे न्यायालयमें उपस्थित रहें। सुल्तान गयासुद्दीन साधारण वेशमें अदालतमें

उपस्थित हुए। काजीने उनका कोई सम्मान नहीं किया, उलटे उन्हें साधारण अपराधीकी भाँति खड़े रहनेका आदेश दिया। सुल्तान भी शान्त खड़े रहे। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। बालककी मातासे माफी माँगी और उसे बहुत-सा धन देनेका वचन दिया। बालककी मातासे राजीनामा लिखवाकर सुल्तानने काजीको दिया।

यह सब हो जानेपर काजी न्यायासनसे उठे और आगे आकर उन्होंने झुककर सुल्तानको सलाम किया। बादशाहने अपने वस्त्रमें छिपी एक छोटी तलवार निकालकर दिखाते हुए कहा—'काजी साहब ! आपकी आज्ञासे न्यायका सम्मान करने मैं आज अदालतमें आया था। अच्छा हुआ कि आपने न्यायालयकी मर्यादा रक्खी। यदि मैं देखता कि आप न्यायसे तनिक भी विचलित हो रहे हैं तो यह तलवार आज आपका गर्दन उड़ा देती।'

काजी सिराजुद्दीनने अब पीछे घूमकर अपने न्यायासनके पाससे रखा हुआ अपना बेंत उठाया। वे बोले—'जहाँपनाह ! अच्छा हुआ कि आपने न्यायालयका ठीक सम्मान किया और अपराध स्वीकार कर लिया, अन्यथा यदि आप तनिक भी हीला-हवाला करते तो यह बेंत आज आपकी चमड़ी उधेड़ देता।'

सुल्तान इससे बहुत संतुष्ट हुए। वे कह रहे थे—'मेरे राज्यमें ऐसे न्यायाधीश हैं, जो इस बातको समझते हैं कि न्याय सबके लिये समान है, न्यायके नियमोंसे अधिक कोई श्रेष्ठ नहीं, इसके लिये मैं परमात्माका आभार मानता हूँ।' ( Noble Path से अनूदित। )

( ६ )

## स्वागतका तरीका

कहा जाता है कि किसी नगरका एक नागरिक अतिथियों तथा अभ्यागतोंको अधिक परेशान करनेके लिये विख्यात हो गया था। वह अतिथियों तथा अभ्यागतोंको स्वागत-सत्कारकी पूछ-ताछ और आवभगतमें ही पूरा तंग कर देता था।

इसपर एक दिन एक दूसरे व्यक्तिने, जो अपनी धुनका बड़ा पक्का था, उस मनुष्यको स्वयं अपनी आँखों देखना चाहा और चलकर उसकी परीक्षा लेनेकी ठानी। उसके मनमें यह बात जमती ही न थी कि 'कोई पुरुष स्वागत और आवभगतमें किसीको परेशान कैसे कर सकेगा ?'

इन सब बातोंको सोचकर वह पुरुष पूर्वोक्त अरब सज्जनके दरवाजेपर उपस्थित हुआ और उसे नमस्कार किया। गृहपतिने भी उससे पधारनेकी प्रार्थना की। वह भीतर गया।

अब जब गृहपतिने उसे स्वागतमन्दिरमें ले जाकर सर्वोत्तम पलंगपर विराजनेकी प्रार्थना की तो यह अभ्यागत बिना किंचिदपि ननु न-च किये उसपर चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देरमें वह एक बड़ा मुलायम मसनद उस आगन्तुकके लिये लाया और यह नवागत व्यक्ति भी पूर्ववत् बिना किसी आनाकानीके उसके सहारे बैठ रहा। अब गृहपतिने अतिथिको चौपड़ खेलनेके लिये निमन्त्रित किया और वह भी तुरंत उस खेलमें शामिल हो गया। तब उसने आगन्तुकके पास भोजन लाकर रख दिया। इस भले आदमीने भी तुरंत उसे खा ही लिया। अब उसने उसके हाथ-पैर धोते ही फुलवाड़ीमें टहलनेका अनुरोध किया और वह भी सीधे वहाँ जाकर टहलने लगा।

अब अभ्यागतने उस गृहपतिसे कहा—'मैं आपसे एक बात कहना चाहता हूँ।' वह क्या गृहपतिने पूछा।

'मुझे यह पता चला है कि आप अतिथियोंको इसलिये परेशान कर देते हैं कि वे लोग जो नहीं चाहते, उसे आप उनके सामने उपस्थित कर देते हैं और वे जो चाहते हैं, उसे आप ध्यानमें भी नहीं लाते।'

'हाँ, हाँ, मैं आपकी बात समझ गया। मेरे घर जब कोई आता है तो जब मैं उसे उत्तम शय्या, उत्तम आसन देने लगता हूँ तो प्रायः वह सबको अस्वीकार करता है। जब मैं भोजन लाता हूँ तो वह कहता है 'नहीं, नहीं, धन्यवाद।' जब मैं उन्हें शतरंज खेलनेके लिये आमन्त्रित करता हूँ तो वह उसे भी स्वीकार नहीं करता। ऐसी दशामें ठीक विरुद्ध बुद्धिके लोगोंको हम कैसे प्रसन्न करें। मनुष्यको यह चाहिये कि वह जब मित्रोंके साथ मिले तो उसके विचारोंका भी ध्यान रक्खे'—गृहपति बोल गया एक ही स्वरमें।

'और यही बात आपको भी चाहिये। एक दूसरेके ध्यानसे ही निर्वाह सम्भव है जो अपनेको बुरा प्रतीत हो

वह दूसरेके साथ न करे, जो अपनेको रुचे, वह दूसरोंको भी मिले—यह बड़ा व्यापक नियम है, तथापि रुचिवैचित्र्यको जानकर भिन्न रुचिवाले व्यक्तिके मनोनुकूल व्यवहार-स्वागत-मिलन ही स्वागतकी विशेषता है'—आगन्तुकने कहा।

—'Akhlaki Muhsini'—Translated from persian, by 'H. G. keene' से अनूदित।

( ७ )

## ऐसा कोई नहीं, जिससे कोई अपराध न बना हो

एक दिन बादशाह अकबरके दरबारमें बड़े जोरोंका कोलाहल सुनायी पड़ा। सभी लोग बीरबलके विरुद्ध नारे लगा रहे थे। आवाज़ आ रही थी—'बीरबल बड़ा नीच है, भारी बदमाश है, बड़ा घातक है।'

बादशाहको क्रोध आ गया। आज्ञा हो गयी—'बस, बीरबलको तुरंत शूलीपर चढ़ा दिया जाय।'

दिन निश्चित हुआ। शूली तैयार हुई। बीरबलने बादशाहसे अन्तिम बात कर लेनेका अवसर माँगा। बातचीतमें उसने कहा—'मैंने सारी चीजें तो आपको बतला दीं, पर मोती बोनेकी कला आपको न सिखा सका।'

अकबरने कहा—'सच। क्या तुम इसे जानते हो? तो ठीक जबतक मैं यह सीख न लूँ, तबतक तुम्हें जीनेका अवसर दिया जाता है।'

बीरबलने कतिपय विशिष्ट महलोंकी ओर संकेत करते हुए कहा—'इन मकानोंको ढहवा दिया जाय; क्योंकि इसी जमीनमें उत्तम मोती पैदा हो सकते हैं।' मकान ढहवा दिये गये। ये महल उन्हीं दरबारियोंके थे, जिन्होंने बीरबलके विरुद्ध झूठी शिकायत की थी—वहाँ बीरबलने जौ बुवा दिये। एक निश्चित दिनपर उसने सब लोगोंको पौधोंको दिखलानेके लिये बुलाया और कहा—'कल प्रातःकाल ये पौधे मुक्ता उत्पन्न करेंगे और कल ही इन्हें काटा जायगा।'

सभी लोग पधारे। ओसकी बूँदें जौके पौधों और पत्तोंपर मोतीकी तरह चमक रही थीं। बीरबलने कहा—'अब आपलोगोंमेंसे जो सर्वथा निरपराधी—दूधका धोया हो, इन मोतियोंको काट ले। किंतु सावधान! यदि किसीने कभी एक भी अपराध किया होगा तो ये मोती पानी होकर गिर पड़ेंगे।'

सभी शान्त थे। बीरबलने अकबरको हाथ बढ़ानेके लिये कहा। पर बादशाह समझ गया—सभीसे अपराध होते हैं। बीरबलका कोई दोष था भी नहीं, यह तो दरबारियोंका एक षड्यन्त्रमात्र था। बीरबलको अभियोगसे बरी कर दिया गया।

## कैसे मानूँ, मैं दूर तुम्हें!

कैसे मानूँ, मैं दूर तुम्हें, जब हो तुम मेरे प्राण! पास।
मैं प्रतिपल अनुभव करता हूँ, तव मादक छवि तव मदिर-हास॥
तुम हरे-भरे भू-प्राङ्गण में, तुम लहरों के नव-नर्तन में।
कोकिल के स्वर में गूँज-गूँज, तुम कूज रहे हो वन-वन में॥
तुम इन्द्र-धनुषके रंगों में, मेघों के श्यामल अंगोंमें।
तारों में तुम तारा-पति में, तुम उच्छल उदधि-तरंगों में॥
तुम रवि-रथ पर चढ़ कर आते, अवनी-तल पर करने विलास।
कैसे मानूँ, मैं दूर तुम्हें, जब हो तुम मेरे प्राण! पास॥

—श्रीमुरलीधरजी दीक्षित, 'भ्रान्त'

१. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत् कथमन्यान् स घातयेत्। यद् यदात्मनि काङ्क्षेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्॥
न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः। एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते॥

श्रीहरिः

# प्रेमी ग्राहकोंकी सेवामें नम्र-निवेदन

( १ ) 'कल्याण'के ५०वें वर्षका यह नवाँ अङ्क है। अगले १०, ११ एवं १२वें अङ्कोंके प्रकाशित हो जानेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। जैसा कि पहले ५वें अङ्कमें सूचित किया गया था, आगामी अर्थात् ५१वें वर्षका नववर्षाङ्क या विशेषाङ्क 'संक्षिप्त श्रीवराहपुराणाङ्क' नामसे प्रकाशित किया जा रहा है। यह अङ्क सभी प्रकारसे आकर्षक एवं उपयोगी होगा।

( २ ) गत वर्ष 'कल्याण'में पर्याप्त घाटा रहा। इस वर्ष भी वेतन आदिमें वृद्धि हुई है, साथ ही रजिस्ट्री, डाक-खर्च आदिके व्यय भी अत्यधिक बढ़ गये हैं। इस कारण 'कल्याण'के वार्षिक मूल्यमें कुछ वृद्धि करना आवश्यक हो गया है। वास्तवमें यह एक प्रकारसे विवशताकी स्थिति है, अतः इसमें मात्र दो रुपयेकी वृद्धि की जा रही है। ऐसा करनेसे घाटेमें कुछ कमी हो सकेगी। मनीआर्डर फार्म इसी अङ्कके साथ भेजा जा रहा है। 'कल्याण'के सहृदय कृपालु ग्राहक इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे, ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है।

( ३ ) इस प्रकार इस वर्ष अजिल्द अङ्कका वार्षिक शुल्क १४) रुपये तथा सजिल्द अङ्कका १६) रुपये हैं। जो महानुभाव इस मूल्य-वृद्धिकी सूचनाके पूर्व ही 'कल्याण'के ५१वें वर्षके मूल्य-हेतु अजिल्द अङ्कका १२) रुपये अथवा सजिल्द अङ्कका १४) रुपये भेज चुके हों, उनकी सेवामें विशेषाङ्क प्रकाशित होते ही शेष रकमकी वी० पी० पी० से भेजा जायगा, वे वी० पी० कृपया अवश्य छुड़ानेका कष्ट करें।

( ४ ) विदेशस्थित ग्राहकोंके लिये इस वर्षके अजिल्द 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क रु० २९.२० पैसे ( दो पौण्ड ) एवं सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ३१.२० पैसे ( दो पौण्ड, पन्द्रह पेन्स ) नियत किये गये हैं। उन्हें भी अपनी रुचिके अनुसार अजिल्द या सजिल्द विशेषाङ्कके लिये उपर्युक्त रकम शीघ्र भिजवानी चाहिये।

( ५ ) पुराने ग्राहकों तथा इस वर्षसे नये ग्राहक बननेवालोंको रुपये भेजनेमें विशेष शीघ्रता करनी चाहिये। कारण, विशेषाङ्क सीमित संख्यामें ही छापा जा रहा है, अतः मनीआर्डरद्वारा रुपये अग्रिम भेजकर आप अपना अङ्क पहलेसे ही सुरक्षित करा लें। पहले अङ्क अग्रिम रुपये भेजनेवालोंको ही रजिस्ट्रीसे भेजे जायँगे और फिर यदि वे शेष बचे, तभी अन्य ग्राहकोंको वी० पी० पी० भेजी जा सकेगी। चालू वर्षमें अङ्क तत्काल समाप्त हो गये थे। फिर बादमें बहुतसे नये ग्राहक महानुभावोंके आग्रह-पर-आग्रह आते रहने तथा देरसे रुपये आनेपर भी अङ्क नहीं भेजे जा सके। इस प्रकार उन्हें निराश होना पड़ा, अतः वर्ष समाप्त होनेसे पूर्व ही आप अग्रिम शुल्क मनीआर्डरद्वारा भेजकर अपना अङ्क रजिस्ट्रीसे प्राप्त कर लें, यह प्रार्थना है।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )

# पृथ्वीकी चेतावनी

## पृथिव्युवाच

कथमेष नरेन्द्राणां मोहो बुद्धिमतामपि। येन फेनसधर्माणोऽप्यतिविश्वस्तचेतसः॥
पूर्वमात्मजयं कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मन्त्रिणः। ततो भृत्यांश्च पौरांश्च जिगीषन्ते तथा रिपून्॥
क्रमेणानेन जेष्यामो वयं पृथ्वीं ससागराम्। इत्यासक्तधियो मृत्युं न पश्यन्त्यविदूरगम्॥
समुद्रावरणं याति भूमण्डलमथो वशम्। कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम्॥
उत्सृज्य पूर्वजा याता यां नादाय गतः पिता। तां मामतीवमूढत्वाज्जेतुमिच्छन्ति पार्थिवाः॥
मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विग्रहः। जायतेऽत्यन्तमोहेन ममत्वादृतचेतसाम्॥

पृथ्वी ममेयं सकला ममैषा मदन्वयस्यापि च शाश्वतीयम्।
यो यो मृतो ह्यत्र बभूव राजा कुबुद्धिरासीदिति तस्य तस्य॥
दृष्ट्वा ममत्वादृतचित्तमेकं विहाय मां मृत्युवशं व्रजन्तम्।
तस्यानु यस्तस्य कथं ममत्वं हृद्यास्पदं मत्प्रभवं करोति॥
पृथ्वी ममैषाशु परित्यजैनां वदन्ति ये दूतमुखैः स्वशत्रून्।
नराधिपास्तेषु ममातिहासः पुनश्च मूढेषु दयाभ्युपैति॥

( श्रीविष्णुपुराण ४। २४। १२८—१३६ )

पृथ्वी कहती है—अहो! बुद्धिमान् होते हुए भी इन राजाओंको यह कैसा मोह हो जाता है, जिसके कारण ये बुलबुलेके समान क्षणस्थायी होते हुए भी अपनी स्थिरतामें इतना विश्वास कर लेते हैं। ये लोग पहले अपनेको जीतकर फिर अपने मन्त्रियोंको वशकर इसके अनन्तर ये क्रमशः अपने भृत्य, पुरवासी एवं शत्रुओंको जीतना चाहते हैं। इसी क्रमसे—'हम समुद्रपर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लेंगे'—ऐसी बुद्धिसे मोहित हुए ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्युको भी नहीं देखते। यदि समुद्रसे घिरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल अपने वशमें हो ही जाय तो भी मनोजयके सामने इसका मूल्य भी क्या है? क्योंकि मोक्ष तो मनोजयसे ही प्राप्त होता है। जिसे छोड़कर इनके पूर्वज चले गये तथा जिसे अपने साथ लेकर इनके पिता भी नहीं गये, उसी मुझको अत्यन्त मूर्खताके कारण ये राजालोग जीतना चाहते हैं। जिनका चित्त ममतामय है, उन पिता-पुत्र और भाइयोंमें अत्यन्त मोहके कारण मेरे ही लिये परस्पर कलह होता है। जो-जो राजालोग यहाँ हो चुके हैं, उन सभीकी ऐसी कुबुद्धि रही है कि 'यह पृथ्वी मेरी है—यह सारी-की-सारी मेरी ही है और ( मेरे पीछे भी ) यह सदा मेरी संतानकी ही रहेगी।' इस प्रकार मुझमें ममता करनेवाले एक राजाको, मुझे छोड़कर मृत्युके मुखमें जाते हुए देखकर भी न जाने कैसे उसका उत्तराधिकारी अपने हृदयमें मेरे लिये ममताको स्थान देता है? जो राजालोग दूतोंके द्वारा अपने शत्रुओंसे इस प्रकार कहलाते हैं कि 'यह पृथ्वी मेरी है, तुमलोग इसे तुरंत छोड़कर चले जाओ', उनपर पहले तो मुझे बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढ़ोंपर दया भी आ जाती है।